शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

मई : १९६५ ☆ वर्ष २०-२१वाँ, बैसाख, वीर नि०सं० २४९१ ☆ अंक : १२-१

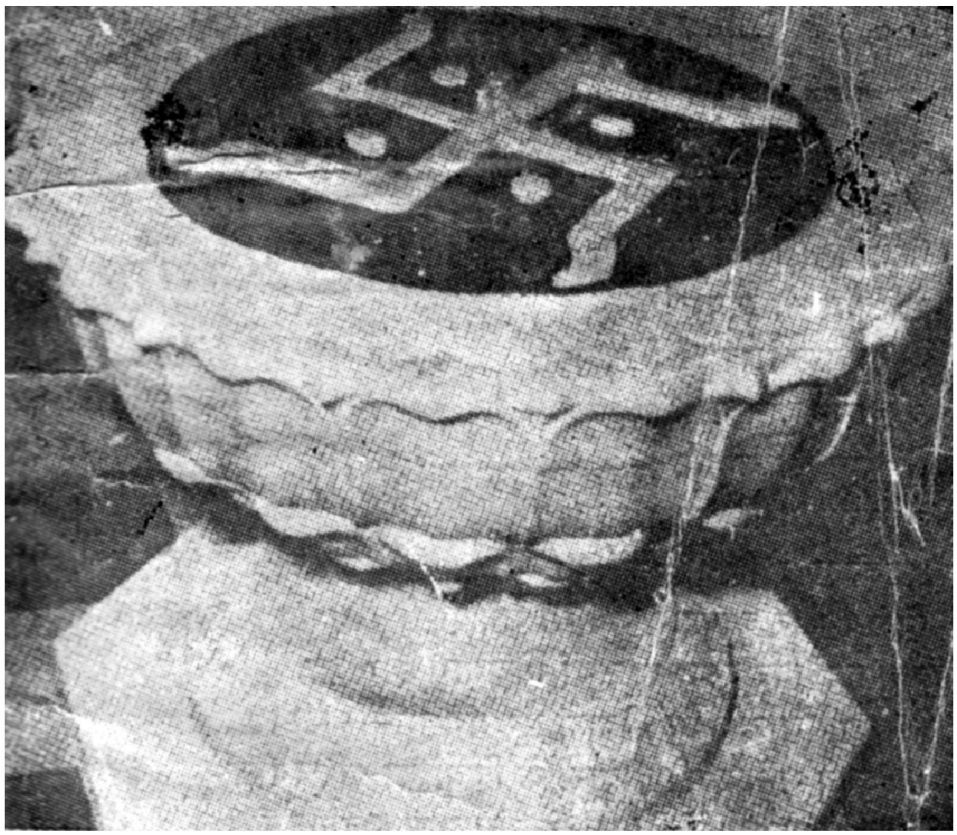

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[२४०-२४१]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

विषय-सूची

१. भगवान महावीर का [तिरंगा चित्र]
२. वर्द्धमान-वीर-महावीर-अतिवीर-सन्मतिनाथ
३. श्री महावीर जिनेश्वर की स्तुति
४. अंकन्यास विधि [तिरंगा चित्र]
५. तीन चित्र
६. धन्य अवतार
७. पूज्य कानजी के गुरुत्व का मिलता ओर न छोर
८. जयवंतो हे गुरु कहान
९. आत्मज्ञ संत
१०. आभार दर्शन [चित्र]
११. लीजिये चैतन्य बधाई
१२. सुवर्ण संदेश
१३. मंगल वर्धन जिनवाणी
१४. आत्मानुभव होने पर....
१५. चित्रावली [८ चित्र]
१६. भगवान श्री ऋषभदेव
१७. दीक्षा कल्याणक [चित्र]
१८. अच्छिन्न ज्ञानधारा
१९. भेदज्ञान की कहानी
२०. आराधक धर्मात्मा का अनुभव
२१. छहढ़ाला प्रवेशिका—परीक्षा पत्र
२२. निश्चय और व्यवहारनय की मर्यादा
२३. क्या व्यवहाररत्नत्रय सच्चा मोक्षमार्ग है ?
२४. स्वाध्यायमंदिर की दीवारों पर मंगलमय वचनामृत
२५. स्वाध्यायमंदिर की दीवारों के चित्रों का परिचय
२६. प्रवचनमंडप की दीवारों के मंगलमय वचनामृत
२७. प्रवचनमंडप की दीवारों के चित्रों का परिचय
२८. समाचार संग्रह

हमारे आराध्य तीर्थनायक

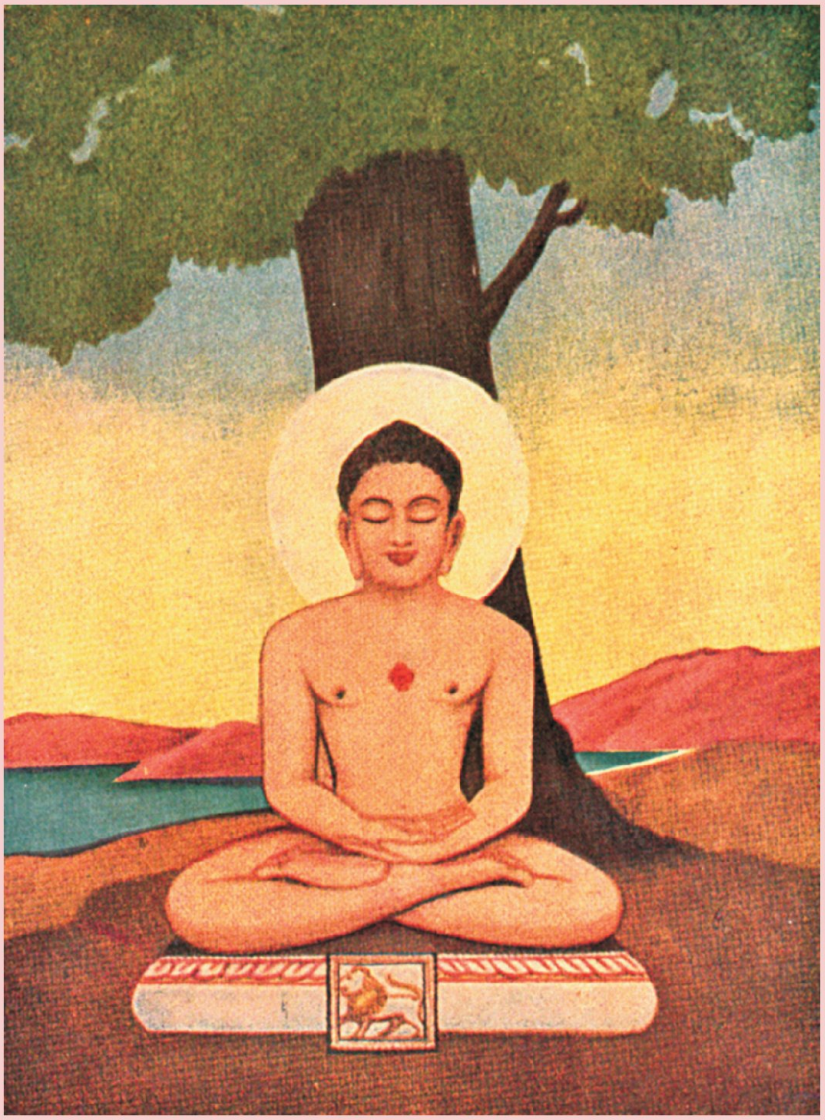

विश्व वंद्य आदर्श-मंगलमय
भगवान महावीर परमात्मा

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

मई : १९६५ ☆ वर्ष २०-२१वाँ, बैसाख, वीर नि०सं० २४९१ ☆ अंक : १२-१

वर्धमान-वीर-महावीर-अतिवीर-सन्मतिनाथ

जो सन्मार्गेच्छुओं के लिये नित्य वन्दन-स्मरण के विषय हैं-आराध्य हैं, जो त्रिजगेन्द्रों के द्वारा भी वंदित होने से तीन लोक के एक (सर्वोत्कृष्ट) गुरु हैं, जिनमें निज अनंत बल से प्रगट की हुई अनंतज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यशक्तिरूप प्रगट परमेश्वरता है, मोह-क्षोभ तथा समस्त प्रकार के शुभाशुभ विकल्परूपी दोष तथा आवरण से रहित वस्तु -स्वभावमय धर्म के कर्ता होने से जो शुद्धस्वरूप परिणति के कर्ता हैं, उन परम भट्टारक, महादेवाधिदेव, परमेश्वर, परम पूज्य, जिनका नाम ग्रहण भी उत्तम है-अच्छा है—ऐसे श्री वर्धमान देव को प्रवर्तमान तीर्थ की नायकता के कारण हम परम विनय सहित प्रणाम करते हैं।

श्री महावीर जिनेश्वर की स्तुति

वीर जिनेश्वर के पद वंदूं, वीरपना अभिनन्दूं जी;
मिथ्या मोह तिमिर भय खंडूं, जित दुंदुभी गंजू जी।
सजकर ज्ञान सु बल दृढ़तासह, अभिलाषा उर धारि जी;
वीर मार्ग में उत्साही बन, योगी अतुल बल धारि जी।
वीरपना आतम गुणस्थानक, कह रही श्रीजिनवाणी जी;
ध्यान विज्ञान स्वशक्ति प्रवांने, पूर्णस्वरूप पहचानी जी।
आलंबन साधन ज्यों त्यागत, पर परिणति भी भागत जी;
अक्षय दर्शन-ज्ञान वैरागे, आनंदघन प्रभु जागत जी।
वीर प्रभु के चरणों में लागूं, वीरपना वह मांगूँजी।

श्रद्धेय कानजीस्वामी के कर कमलों से यहाँ मंगल विधि सम्पन्न हो रही है।

जिनेन्द्रदेव के परम भक्त श्री कानजीस्वामी ने ऐसे एक-दो-बीस-पच्चीस नहीं, अपितु तीन सौ से अधिक जिनेन्द्र भगवान के बिम्बों पर प्रतिष्ठा मंत्र की अंकन्यास विधि की है।

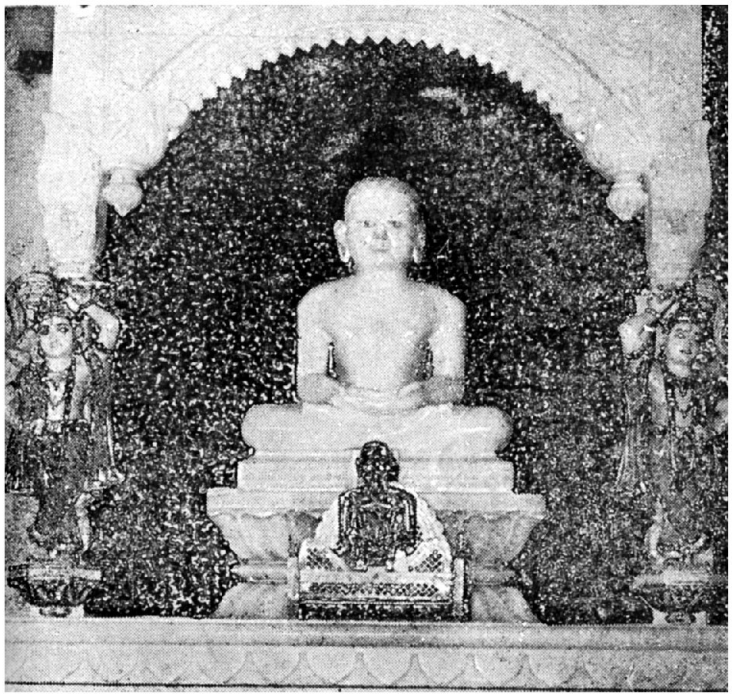

जन्मधाम उमराला जिन मन्दिर में श्री सीमंधर भगवान

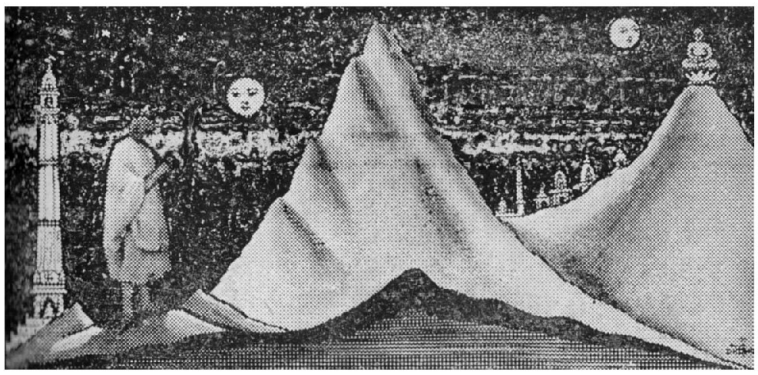

सीमंधर भगवान को परोक्ष वंदन

शान्त सुधारस-अमृत सिंचक पू० कानजी स्वामी
वृक्ष नीचे स्वाध्याय करते हैं

आप संत की शीतल छाया में आपकी अध्यात्मरस झरती मधुर वाणी, हृदय से सुनने से संसार के आताप शांत होते हैं, जैसे वृक्ष का आश्रय करनेवाले पुरुष को छाया स्वयं प्राप्त हो जाती है। स्वात्मानुभूति-दर्शक आपकी वाणी, पामर को प्रभुता की दृष्टि देकर उनकी प्रभुता की पहिचान कराते हैं। विस्मृत चैतन्य परमपद याद कराकर मोक्षमार्ग का अंकुर प्रगटाते हैं। धर्म जिज्ञासुओं के लिये कल्पवृक्ष समान महामनोज्ञ वदतांवर... आपके उपकार का प्रति उपकार करने में असमर्थ ऐसे, हम मुमुक्षुगण आपको परम भक्ति से वंदन करते हैं।

धन्य अवतार!

हे परम उपकारी अध्यात्म योगी ! सत्य के अवतार...

आप श्री का अवतार धन्य है। आत्महित का जिसको प्रयोजन हो, उनके लिए गूढ़ तत्त्वज्ञान के मर्म को अत्यंत स्पष्टतया खोलकर सभी विषमता की उलझन मिटाने का स्वतंत्रता का उपाय आपने ही नि:संकोचतया स्पष्टरूप में दर्शाकर धर्म जिज्ञासुओं पर महान अनुपम उपकार किया है, इसीलिये आपकी ७६वीं जन्म जयंती मनाते हुए हम भक्तों को बहुत हर्ष होता है। समर्थ दिगम्बर जैनाचार्यों कथित वीतराग-विज्ञान से भरपूर शास्त्रादि हमको मिलने पर भी, उनके रहस्यवेत्ता के अभाव में अज्ञानांधकार ही था, ऐसे अवसर में आपको पुनीत जन्म हुआ, आपने आचार्यकल्प श्री टोडरमलजी के समान वीतरागी सम्यक् अनेकांतमय नि:शंकमार्ग सम्हाल कर सूक्ष्म दृष्टि द्वारा श्रुतसागर का मंथन कर धर्म जिज्ञासुओं के लिये पवित्र अमृत निकाला, जो निर्भयता से परोस रहे हैं। 'संत के बिना अंत की बात का अंत पा सकते नहीं' इस सूत्र की सिद्धि आपमें दृष्टिगत होने पर आपकी सुमधुर वाणी को सुनने के लिये आपके समीप भारत के कौने-कौने से लाखों धर्म जिज्ञासु आते हैं।

आप पराधीनता की निवृत्ति, स्वाधीनता की प्राप्ति के प्रणेता हो, दिव्य दृष्टा अकषाय करुणा के सागर हो, ऐसा समझकर जो आपका शरण ग्रहण शील होकर हेय-उपादेय के परीक्षक हुये हैं, वे सब सच्चे सनाथ हुए हैं। आपके अपार उपकार को बारंबार याद करके इस ७६वीं जन्म जयंती पर आपको हमारा भक्ति पूर्वक शत-शत वंदन है।

पूज्य कानजी के गुरुत्व का मिलता ओर न छोर

(आशु कवि श्री कल्याणकुमार जैन 'शशि' रामपुर)

आत्म धर्म में निहित धर्म की नैया के पतवार!
कुन्दकुन्द आचार्य समर्थित, परम्परा के हार!
अति प्रभावशाली प्रतिभामय धर्म मूर्ति साकार!
जीवन दर्शन आज तुम्हारा जीवन के अनुसार!

आत्म धर्म को जागृत करने में रत हो निशियाम!
आध्यात्मिकता के प्रहरी तुम, तुमको कोटि प्रणाम!

श्री सोनगढ़ संतप्रवर तुम, दिया ज्ञान का दान!
भरा हुआ है अलौकित वाणी में तत्त्व ज्ञान!
आत्मोद्धारक पंथ प्रदर्शक है उपदेश महान!
मानो बोल रहा शुद्धोऽहं कण कण में गतिमान्!

भटके हुए पगों को तुमसे दिशा मिली अभिराम!
आध्यात्मिकता के प्रहरी तुम, तुमको कोटि प्रणाम!

लगी हुई है झड़ी धर्म-वर्षा की चारों ओर!
सुख खोजी जिज्ञासु विज्ञजन, सब आनंद विभोर!
संत चंद्र पर मोहित श्रोताओं का चित्त चकोर!
पूज्य कानजी के गुरुत्व का मिलता ओर न छोर!

छेड़ रखा है कर्म सैन्य से भीषणतर संग्राम!
आध्यात्मिकता के प्रहरी तुम, तुमको कोटि प्रणाम!

जयवन्तो हे गुरु कहान!

[श्री भँवरलाल सेठी, गोहाटी]

सुनकर के उपदेश तुम्हारा
आत्म ज्योति जग जाती है,
मिलती नई दिशा जीवन में,
सब भ्राँति भग जाती है।
समयसार का ज्ञान स्वयं
पढ़कर तुमने पाया है,
कुन्दकुन्द की आत्म ज्योति से,
अपना दीप जलाया है।
क्रिया कांड में धर्म समझकर
भूल रहे थे जब प्राणी।
ऊपर से बहकाते थे कुछ,
हमको मिथ्या अभिमानी!
सद्ज्ञान सूर्य चमका करके,
मिथ्या पाखंड हटाया है।
जयवंतो हे गुरु कहान,
तुमने सत् मार्ग बताया है।

आत्मज्ञ संत

[पूज्य स्वामीजी के प्रति भाई श्री खेमचंद जे० सेठ की]

श्रद्धांजलि

कोटि कोटि वंदन हो उन पुण्य प्रभावी आसन्न भव्य सद्गुरु के आत्मा को...! हम उनके ७६वें जन्मोत्सव के मंगल दिवस पर भावना भाते हैं कि—वे चिरायु हों तथा जगत के सर्व जीवों का कल्याण करें!! कल्याणमय, चिन्मुद्रांकित आत्मतत्त्व में प्रविष्ठ होने के दिव्य संदेश द्वारा निर्मल श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रमय अक्षय निधि आपने खुल्ले किये-प्रकाशित किये, कहाँ से! निज वैभव में से और इससे प्रभावित तथा प्रमोदित हुए अनेक भव्य।

१- उमराला में प्रगट हुआ 'ॐकार' का झेलनेवाला और झेलकर प्रगट किया जिसने शुद्धात्मा का सार।

२- परिवर्तन किया जिसने सुवर्णपुरी में और कराया अनेक भव्यजीवों का परिवर्तन।

३-जिसने परिवर्तनशील संसार में वास्तविकरूप से समझाया अपरिवर्तनशील आत्मतत्त्व का महात्म्य।

४- सुवर्णपुरी में जिसने सुवर्णमय संदेश दिये यथार्थता के, स्वतंत्रता के और वीतरागता के।

५- निडरतापूर्वक सत्यमार्ग का प्रकाश किया जिस वीतरागता के वीर उत्तराधिकारी ने।

६- करना है कुछ अपूर्व—ऐसा बचपन में कहनेवाले उस संत ने जगत की है अपूर्व धर्म प्रभावना।

७- वीतराग मार्ग की विजय पताका फहरायी जिसने अपनी दिव्य शक्ति से।

८- जिसके अंतर से झरते हुए शांति के अमृतबिन्दु अत: शमित करते हैं जगत के त्रिविध ताप का।

९- आत्मबन्दर के जिस मल्लाह ने बनाया है परम पारिणामिकभाव को ध्रुवतारा और यात्रा आरम्भ की है मोक्षपुरी की।

१०- करता है जो व्यवहार भावों को सदा गौण और देता है ज्ञायक भाव को सदा मुख्यता।

११- है वह सदा मुक्ति का महामुमुक्षु और विकारी भावों का विजेता।

१२- पावन यात्री बना है जो अनेक तीर्थधामों और सिद्धक्षेत्रों का।

राजकोट (सौराष्ट्र) ७६ वीं जन्म जयन्ती उत्सव पर

आभार दर्शन

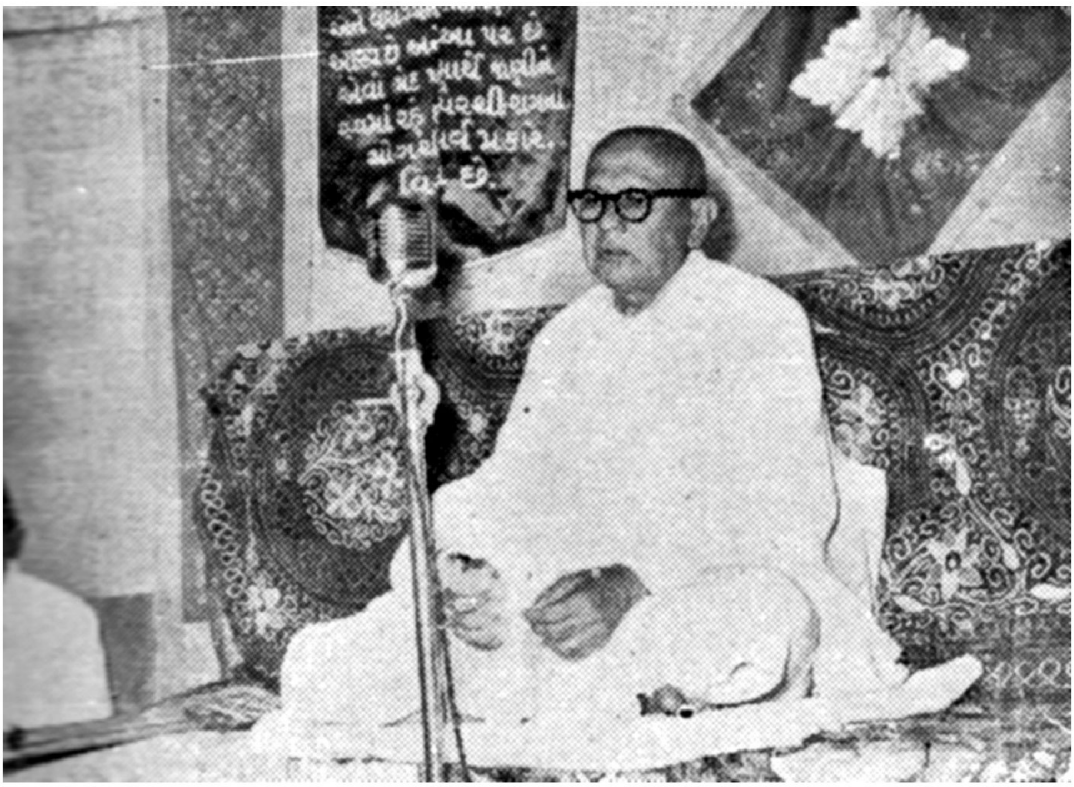

परमोपकारी पूज्य कानजी स्वामी के प्रति
भाई श्री रामजीभाई तथा खेमचन्दभाई शेठ की श्रद्धाजंलि

१३- अनेक भव्यों का संसार विष उतरा है जिसकी परमामृतमय अमृतवाणी से।

१४- बहायी है श्रुतज्ञान की सरिता जिसने और शुद्ध बने हैं, उसमें स्नान करके भव्यों के हृदय।

१५- मंत्रमुग्ध बने हैं अनेक जीव जिसकी मधुर श्रुतज्ञान की बंसरी के नाद से।

१६- अंतर उल्लसित हुए हैं अनेक मुमुक्षुओं के जिसकी अमोघ आत्मानुभव पूर्ण कल्याणकारिणी वाणी के श्रवण से।

१७- संसार सागर पार उतारनेवाला जो ज्ञानी नाविक है।

१८- अध्यात्म निधान खोले हैं जिस चैतन्य ऋद्धिधारी ने।

१९- अध्यात्म श्रुतसागर में से बीनकर जगत के समक्ष प्रगट किये हैं अनेक महामूल्यवान सिद्धांत मौक्तिक जिसने।

२०- शुद्धात्म द्रव्य के अवलंबन से ही हो सकती है आत्मकल्याण की साधना—ऐसा जिसने अमंदरूप से प्रतिपादन किया है।

२१- परद्रव्य-परभाव की उपेक्षा करके स्वद्रव्य-स्वभाव की ही अपेक्षा करने का जो निरंतर आदेश देता है।

२२- सांसारिक राग-रंग को हेय करके जो निरोगी आत्मानंद का आस्वादन कर रहा है।

२३- अंतरंग चैतन्य अंग में अभंग छलांग लगाने के लिये जो सतत् प्रयत्नशील रहता है।

२४- सहजानंदमय परिणति का जो तादृश चित्रण करता है।

२५- स्थापित हुए हैं जिसके परम पुनीत प्रताप से अनेक जिनमंदिर।

२६- पावन हुए हैं अनेक नगर जिसके पावन चरणकमल से।

२७- ग्रहण किया है ब्रह्मचर्य अनेक जीवों ने जिस कुमार ब्रह्मचारी के सदुपदेश से।

२८- सिद्धपद प्राप्ति का है जो पावन पथिक।

२९- है वह जैनेन्द्र तत्त्वज्ञान का महान प्रचारक।

३०- है वह आदर्श आत्महित साधक।

३१- है वह चैतन्य वैभवधारी और आत्मसृद्धि का स्वामी।

३२- वर्तता है जिसके पुण्य और पवित्रता का सुयोग।

३३- अकारण करुणा के समुद्र, सुज्ञान के पोषक सुमेघ, हमारे जीवन विवेक प्रदाता जीवनशिल्पी आपको परम भक्ति से नमस्कार करता हूँ।

लीजिये चैतन्य बधाई!

वैशाख शुक्ला दूज के दिन जन्मोत्सव की उमंग भरी बधाई के पश्चात् प्रवचन में पूज्य स्वामीजी ने चैतन्यानंद की अलौकिक बधाई सुनायी... उस चैतन्य बधाई को सुनते ही भक्तों का हृदय हर्ष विभोर हो उठा.... यहाँ भी वह मंगल बधाई दी जा रही है, इसे स्वीकार कीजिये!

(१) चैतन्य के आनंद का अनुभव कैसे हो और अनादिकालीन अज्ञान कैसे दूर हो, उसकी यह बात है।

(२) चैतन्य भगवान विज्ञानघन स्वरूप हे, राग-द्वेषरूप मलिनता उसके स्वरूप में नहीं है।

(३) शांतरस से भरपूर आत्मा के अनुभव के समक्ष धर्मात्मा को इन्द्र का इन्द्रासन भी तुच्छ तृणसमान भासित होता है।

(४) चैतन्य में आनंद भरा है, उसी में से स्वोन्मुखता द्वारा वह प्राप्त होता है।

(५) अपने में ज्ञान-आनंद भरा है, किंतु अज्ञानवश वह अपना स्वरूप भूल गया है।

(६) यहाँ अज्ञान दूर होकर सम्यक् आत्मानुभव हो, ऐसी अपूर्व बात है।

(७) भाई, तू अपने को जान। (Know the self.) स्वयं अपने को जाने तो अपूर्व शांति प्रगट हो।

(८) जहाँ चैतन्य का ऐसा अपूर्व भान प्रगट किया, वहाँ आत्मा में अपूर्व स्वर्णिम प्रभात का उदय हुआ।

(९) चैतन्य का अनुभव होने पर अतीन्द्रिय आनंद से परिपूर्ण मंगल प्रभात उदित हुआ और अनादिकालीन अज्ञानांधकार टल गया।

(१०) सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा में अपूर्व धर्म का अवतार हुआ... सिद्धों के संदेश आये।

(११) आत्मा बाह्यपदार्थों के बिना आनंद स्वभाव से परिपूर्ण है, उसी में से सुख प्रगट होता है।

(१२) अज्ञानी स्वसुख को भूलकर बाहर के अनंत पदार्थों को सुख का कारण मानता है, उसमें अनंत आकुलता है।

(१३) बाह्य में सुख तो कल्पना ही है, सुख तो आत्मा के स्वभाव में भरा है।

(१४) जिसप्रकार हाथी लड्डू और घास को एकमेक करके विवेक के बिना खाता है, उसीप्रकार पशुसमान अज्ञानी, चैतन्य के और राग के स्वाद का एकत्वरूप से वेदन करता है।

शुभराग भला है, करनेयोग्य है, ऐसा व्यवहार (-पराश्रय) का पक्ष, अनादिरूढ़ प्रौढ़ विवेकवान निश्चय में अनारूढ़ विकल्प परायण रहने का गुलाम मार्ग का पक्ष है, जो अनादि से नया-नया कर रहे हैं, वह संसार है।

(१५) चैतन्यानंद के शांतरस के स्वाद को भूलकर अज्ञानी को राग का रंग चढ़ गया है।

(१६) धर्मात्मा को चैतन्य का रंग चढ़ा है, चैतन्य के स्वाद के समक्ष राग का रस उसे छूट गया है।

(१७) अरे, ऐसा मनुष्य अवतार अनंत काल में प्राप्त हुआ है, उसमें यह वस्तु समझे तो सफलता है।

(१८) अंतर में आत्मा को समझने की लगन लगना चाहिये। चैतन्य का रंग लगे तो राग का रंग उड़ जाये।

(१९) आत्मानुभूति का स्वाद अति मधुर है... जगत के किन्हीं पदार्थों में ऐसा स्वाद नहीं है।

(२०) अज्ञानी राग के स्वाद को आत्मा के चैतन्य रस का स्वाद मानता है, उसे चैतन्य के मधुर वीतरागी स्वाद की खबर नहीं है।

(२१) जिसप्रकार शराब के नशे में चूर व्यक्ति श्रीखंड में दही और शक्कर के भिन्न-भिन्न स्वाद को नहीं जानता, उसीप्रकार मोह की मूर्च्छा में पड़े हुए अज्ञानी को चैतन्य के आनंदस्वाद और राग के आकुलस्वाद की भिन्नता का भान नहीं है।

(२२) किंतु जहाँ भिन्नता का भान हुआ, वहाँ ऐसा अनुभव हुआ कि अहो, यह मेरे चैतन्य का स्वाद राग से भिन्न अचिंत्य है; ऐसा स्वाद पहले कभी अनुभव में नहीं आया था।

(२३) अनुभव होने पर आत्मा में अपूर्व दूज का उदय हुआ... अब वह पूर्ण कला से विकसित होकर केवलज्ञान होगा ही।

(२४) ऐसे अनुभव के बिना अन्य चाहे जितने साधन करे, तथापि उसमें धर्म की गंध भी नहीं है।

(२५) अरे, एक मक्खी जैसा छोटा प्राणी भी फिटकरी पर बैठे और उसमें मीठा स्वाद न आये तो वह उसे छोड़ देती है, और शक्कर में से मीठा स्वाद आने के कारण उस पर बैठती है;—इतना स्वादभेद का विवेक मक्खी को भी है। तो अरे जीव! राग में आकुलता है, उसमें कहीं चैतन्य का मधुर स्वाद नहीं है। इसलिये उस पर से तू अपनी रुचि हटा... आत्मा में उपयोग लगाने पर उसमें से अतीन्द्रिय शांति का मधुर स्वाद आता है, इसलिये उसमें अपने उपयोग को लगा।

(२६) चैतन्य के और राग के स्वाद का विवेक करके जिसने आत्मा में उपयोग लगाया, उसके सम्यक् बोधिबीज का उदय हुआ और अपूर्व आनंद का स्वाद आया।

(२७) जहाँ चैतन्य के आनंद का स्वाद आया और उसमें रुचि लगी, वहाँ धर्मात्मा जगत की प्रतिकूलता के समूह को भी नहीं गिनता।

(२८) धर्मात्मा ने अंतर्मुख होकर अपने चैतन्य का अवलंबन लिया है, वह चैतन्य के अवलंबन से अपनी परमात्मदशा को साधता है।

(२९) जहाँ सम्यक् भान हुआ, वहाँ आत्मा में बोधि बीज का उदय हुआ... आत्मा में आनंद के अंकुर फूटने लगे।

(३०) अपने आत्मा के स्वाद में दुनिया की प्रतिकूलता मुझे डरा नहीं सकती और अनुकूलता मोहित नहीं कर सकती।

(३१) ऐसी ज्ञान दूज का जिसके उदय हुआ, वह अल्प काल में केवलज्ञान प्रगट करके पूर्ण परमात्मा हो जायेगा।

(३२) चैतन्य की प्रतीति के बिना अज्ञान से पर में कर्तृत्व बुद्धि कर-करके बहिर्वृत्ति से जीव दु:खी होते हैं।

(३३) जिसप्रकार हिरन अज्ञान के कारण मृगमरीचिका को जल मानकर पीने के लिये दौड़ते हैं और दु:खी होते हैं, उसीप्रकार जीव अज्ञान से ही पर में कर्तृत्व मानकर तथा राग के साथ कर्ताकर्मरूप वर्तते हुए दु:खी होते हैं।

(३४) स्वयं त्रैकालिक चिदानंदस्वरूप आत्मा है, उसकी प्रतीति के अभाव में अज्ञानी जीव आकुलता में (राग में) शांति ढूँढ़ता है, किंतु अनंतकाल में भी राग में से शांति प्राप्त नहीं होगी।

(३५) अरे जीव! तू मृगमरीचिका को जल मानकर दौड़ा... बहुत दौड़ा... तथापि शीतल वायु भी प्राप्त नहीं हुई। तू विचार तो कर कि यदि वहाँ सचमुच जल हो तो अभी तक शीतल वायु भी क्यों नहीं आती? उसीप्रकार अनादिकाल से अज्ञानी, राग में शांति मानता है, किंतु भाई! तू विचार तो कर कि अभी तुझे चैतन्य की शीतल वायु भी क्यों नहीं मिलती?

(३६) चैतन्य के स्वभाव में शांति है, उसे यदि लक्ष में ले तो अनंतकाल से अप्राप्त ऐसी शांति की शीतल वायु अपने अंतर से प्रवाहित हो।

(३७) प्यासे हिरन मृगजल में पानी मानकर उल्टे दु:खी होते हैं, उसीप्रकार आकुलता में

(राग में) एकाकार वर्तते हुए अज्ञानी जीव शुभाशुभराग में शांति मानकर उल्टे दु:ख का ही वेदन करते हैं।

(३८) यदि मृगजल से प्यासे हिरनों की प्यास बुझे तो शुभराग से अज्ञानी को शांति प्राप्त हो।

(३९) राग में चैतन्यप्रकाश नहीं है और चैतन्यप्रकाश में रागरूप अंधकार नहीं है ?—इसप्रकार दोनों की भिन्नता है।

(३९) जिसप्रकार प्रकाश में अंधकार नहीं है, उसीप्रकार चैतन्य में राग नहीं है और जिसप्रकार अंधकार में प्रकाश नहीं है, उसीप्रकार राग में चैतन्य नहीं है।

(४०) जिसप्रकार अंधकार और प्रकाश भिन्न हैं, उसीप्रकार राग और चैतन्य दोनों भिन्न है।

(४१) अज्ञानी ज्ञान को भूलकर परमार्थ के कर्तारूप से वर्तता है, वह उसका मोह है।

(४२) आचार्यदेव कहते हैं कि आत्मा तो ज्ञान है, ज्ञानस्वरूप आत्मा ज्ञान के अतिरिक्त और क्या करेगा ?

(४३) ज्ञानस्वरूप आत्मा ज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी पर भाव को करता है, वह अज्ञानियों का मोह है।

(४४) पर का कर्ता तो अज्ञानी भी नहीं हो सकता, अज्ञानी मात्र अपने मोहभाव को करता है।

(४५) अरे भाई, तेरा आत्मा ज्ञान है.... उस ज्ञान को तू राग से भिन्न जान।

(४६) अहो, यह तो जन्म-मरण के फेरे से छूटने की बात है।

(४७) यह तो संतों के अंतर अनुभव से झरता हुआ परम सत्य है।

(४८) चैतन्य की ऐसी परम सत्य बात सुनकर उसका आदर हो, उसमें भी राग की विशेष मंदता हो जाती है और उसमें सहज ही उच्च पुण्य का बंध हो जाता है, किंतु आत्मार्थी को राग का प्रेम नहीं है।

(४९) चैतन्यस्वभाव का बहुमान करके उसके निर्णय का एवं अनुभव का उद्यम करना, वह मुख्य वस्तु है।

(५०) स्वभाव के बहुमान में उच्च पुण्य बंध हो, वह तो अनाज के भूसे के समान है, उस पर धर्मात्मा का लक्ष नहीं है। जिसप्रकार अच्छे किसान का लक्ष अनाज पर होता है, उसीप्रकार धर्मात्मा का लक्ष चैतन्यस्वभाव पर है।

(५१) अज्ञानी ने स्वभाव में जाने के लिये राग का अवलंबन माना है; संत उसका निषेध

करते हैं कि अरे भाई! तुझे राग की शरण नहीं है, राग से भिन्न परिणमित होनेवाला ज्ञान ही तुझे शरणभूत है; इसलिये तू ऐसे ज्ञान को जान।

(५२) अरे श्रोताओं! तुम्हारे ज्ञान में हम अनंत सिद्धों की स्थापना करते हैं।

(५३) यह बात तेरे हृदय में जमने पर तेरा लक्ष ज्ञान पर ही रहेगा; इसलिये रागादि का आदर नहीं होगा और अल्पकाल में राग को हटाकर तू भी सिद्ध हो जायेगा।

(५४) यदि आत्मा का स्वरूप सत्यरूप से समझे तो उस सच्ची समझ में अनुभूति का आनंद आये बिना न रहे।

(५५) भगवान के सेवक संत जागृत हुए, वे भगवान के प्रतिनिधि बनकर जगत को भगवान का संदेश सुनाते हैं।

(५६) अरे जीवों! राग से पृथक् होकर तुम अपने चैतन्य में प्रवेश करो... चैतन्य में आरोहण करो।

(५७) अधर्मकाल में विकार का वेदन था, अब धर्मकाल में उससे भिन्न ही (चैतन्यरस का) आनंदमय वेदन हुआ।

(५८) भाई, राग का उत्साह छोड़कर चैतन्य का उत्साह कर, एक बार चैतन्य का उत्साह करके अंतरोन्मुख हुआ कि भव से बेड़ा पार!

(५९) भाई, यह भव का अंत करने का अवसर आया है; उसमें अनंत संत महंत कहते हैं ऐसे आत्मा की तो प्रतीति कर।

(६०) धर्मात्मा को चैतन्य की लगन लगी है; चैतन्य रंग के समक्ष जगत के रंग उसे फीके लगते हैं।

(६१) राग से भिन्न चैतन्य की प्रतीति करके उसने अपने आँगन में चैतन्य परमात्मा का पदार्पण कराया है।

(६२) अहा, जिसके आँगन में परमात्मा पधारे, वह अब परभाव के कर्तृत्व में कैसे रुकेगा? कहाँ परमात्मा और कहाँ परभाव?

(६३) संत-महंत कहते हैं कि सिद्ध प्रभु का बुलावा आया है, अब तो हम सिद्धों की मंडल में सम्मिलित हो गये हैं।

(६४) उपयोग को राग से पृथक् करके अंतरचैतन्य की ओर उन्मुख किया, वहाँ अपूर्व धर्म का अवतार हुआ।

(६५) भाई, जीवन में ऐसा आत्मभान करने में ही जीवन की सफलता है, उसके सिवा सब हाय-हाय और दौड़-धूप है।

(६६) अरे चैतन्यप्रभु! तेरी प्रभुता तेरे चैतन्यधाम में है, राग में तेरी प्रभुता नहीं है।

(६७) अनाकुल चैतन्यभाव का वेदन हो, उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहा जाता है।

(६८) धर्मात्मा रागरूपी मलिनता से भिन्न होकर चैतन्य के निर्विकल्प वेदनरूप शांत जल को पीते हैं।

(६९) स्व-पर का भेदज्ञान होने पर धीर और गंभीर ज्ञान-ज्योति प्रगट होती है और राग के साथ कर्ताकर्मपनेरूप मोहगाँठ टूट जाती है।

(७०) धर्मात्मा को अंतर से चैतन्यस्वाद आया, उसमें ऐसी निःशंकता है कि अब अल्पकाल में परमात्मा होंगे।

(७१) चैतन्य का निर्धार करके स्वरूप सन्मुख होने पर, राग से पृथक् निर्विकल्प आनंद का अनुभव हो, उसका नाम धर्म है।

(७२) भाई, अनंत युग विभाव के मार्ग में बीत गये किंतु तुझे अपनी प्रभुता प्राप्त नहीं हुई; तेरी प्रभुता तो तेरे अंतर में चैतन्य से परिपूर्ण है, उसका अवलोकन कर तो प्रभुता का मार्ग हाथ में आये।

(७३) सम्यग्दर्शन होने पर भगवान आत्मा स्वयं अपने अनुभव में प्रसिद्ध हुआ कि मैं तो ज्ञान हूँ; राग का वेदन मैं नहीं हूँ।

(७४) ऐसे चैतन्य के स्वसंवेदन से जहाँ सम्यग्दर्शनरूपी दूज का उदय हुआ, वहाँ आत्मा में चैतन्य का अपूर्व मंगल आरम्भ हुआ और अब वह बढ़ते-बढ़ते पूर्ण केवलज्ञान हो जायेगा।

(७५) उत्तम, मंगल और स्थायी शरण बतानेवाले भूत-वर्तमान-भावि जगतशिरोमणि तीर्थंकरों को नमस्कार।

(७६) सम्यक् अनेकांत द्वारा एकांत आत्महित में सावधान होना सच्ची शिक्षा है।

जन्मदिवस पर ऐसी चैतन्य बधाई देनेवाले स्वतंत्रता-वीतरागता
और यथार्थता को ही ग्रहण करनेरूप निर्मल जीवनदाता
गुरुदेव की जय हो!

गुरुदेव के मंगल जीवन से प्राप्त होनेवाला

सुवर्ण संदेश

लेखक - ब्रह्मचारी हरिलाल जैन अनुवादक - मगनलाल जैन

धर्मात्माओं का जीवन मुमुक्षु जीवों को अनेक प्रकार से आत्महित की प्रेरणा देता है। पुराणों में तीर्थंकर, गणधर, मुनिवर, चक्रवर्ती आदि की अनेक भवों की आत्मसाधना का जो वर्णन किया है, उसे पढ़कर भी ज्ञान-वैराग्य की कैसी ऊर्मियाँ स्फुरित होती हैं ?—तो फिर ऐसे किसी धर्मात्मा का जीवन साक्षात् देखने पर मुमुक्षु हृदय में कैसी-कैसी तरंगें उल्लसित होंगी !!—यह तो सहज ही समझा जा सकता है।

जब—तीर्थंकरों या मुनियों की तो बात ही क्या,—धर्मात्माओं के दर्शन की भी अति-अति विरलता हो गई है, ऐसे इस काल में गुरुदेव के साक्षात् दर्शन, सत्समागम तथा निरंतर उपदेश की प्राप्ति वह हम सबका महान सद्भाग्य है। जिनके मंगल जीवन का विचार करने पर, वह जीवन भी अनेक विध 'सुवर्ण-संदेश' दे रहा है—ऐसे परमोपकारी का जन्मोत्सव मनाते हुए हमारे असंख्य प्रदेश हर्ष एवं भक्ति से रोमांचित हो उठते हैं।

पूज्य स्वामीजी का जीवन उनके अपने लिये तो मंगलरूप और कल्याणरूप है ही, और हमें भी उनका जीवन अनेक प्रकार की मंगल-प्रेरणाएँ दे रहा है। अहा! जिस जीवन का प्रत्येक क्षण आत्महित लिये व्यतीत होता हो, जिस जीवन का प्रत्येक क्षण संसार को छेदने के लिये छैनी का कार्य करता है, जिस जीवन का प्रत्येक क्षण आत्मा को मोक्ष के निकट ले जाता हो—वह जीवन सचमुच धन्य है.... आपके मंगल जीवन में से हमें जो प्रेरणाएँ मिलती हैं, उनका इस जन्मोत्सव के मंगल अवसर पर परम उपकार बुद्धि से संक्षिप्त आलेखन किया है:—

(१) आपका मंगलमय जीवन सबसे महान एवं अति महत्त्वपूर्ण प्रेरणा देता है—आत्मार्थ की लगन की! जिसप्रकार श्रीकृष्ण के जन्म के समय 'कंस को मारने के लिये मेरा अवतार है'—ऐसी आकाशवाणी का होना कहा जाता है, उसीप्रकार कहान गुरु के जीवन में प्रथम से ही ऐसी अन्तरध्वनि सहज होती थी कि—'आत्मार्थ साधने के हेतु ही मेरा अवतार है।' उनके जीवन चरित्र में श्री पंडित हिम्मतलाल जे. शाह लिखते हैं कि—'उनके अंतर में ऐसा लगता रहता था कि—मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है। कभी-कभी यह दुःख तीव्रता धारण करता और

अनेक बार तो माता से बिछुड़े हुए बालक की भाँति वे बाल महात्मा सत् के वियोग में खूब रोये थे।'

—इस पर से हम आत्मार्थ की धुन जगाकर आपके जीवन की प्रेरणा को झेलें... यह है स्वामीजी के जीवन से प्राप्त होनेवाला प्रथम सुवर्ण सन्देश।

(२) आत्मा क्या वस्तु है अथवा सम्यग्दर्शन क्या वस्तु है—उसके तो शब्द भी सुनने को नहीं मिलते थे; अनेक प्रकार की विपरीत मान्यताओं के बादलों से धर्म घिर चुका था, ऐसे कठिन काल में भी किसी की सहायता या मार्गदर्शन के बिना गुरुदेव को आत्मा में से अध्यात्म के अनेक संस्कार स्फुरित हुए और उस स्फुरणा के बल से सत् का निर्णय करके मार्ग की प्राप्ति की; उससे हमें ऐसी प्रेरणा मिलती है कि—हमारे धार्मिक संस्कार ऐसे सुदृढ़ होना चाहिये कि भव-भव में साथ रहकर हमारा कल्याण करें।

(३) अत्यन्त निडरता और निस्पृहता पूर्वक किया हुआ आपका सम्प्रदाय-परिवर्तन हमें ऐसा बोध देता है कि यदि तुझे अपना आत्मार्थ साधना हो तो जगत की दरकार छोड़ देना। तू जगत की ओर देखकर बैठा मत रहना। जगत की प्रतिकूलता से डरकर तू अपने मार्ग को नहीं छोड़ना। जगत चाहे जो कहे, तू अपने आत्महित के मार्ग पर नि:शंकरूप से चले जाना। (यह है तीसरा सुनहर संदेश।)

(४) स्वामीजी के जीवन का चौथा संदेश है—वात्सल्य का। साधर्मी वात्सल्य आपके जीवन में (अंतर में) कितना भरा है, वह उनके एक ही उद्गार पर से समझ में आ सकेगा। पद्मपुराण में अंजनासती के जीवन प्रसंग आप पढ़ रहे थे। वहाँ जब अंजना निर्जन वन में विपाल करती है, उस प्रसंग का वर्णन आया, तब आँखों से आंसू टपकने लगे, और उनके हृदय से उद्गार निकले कि—'अरे! धर्मात्मा के ऊपर पड़नेवाला दु:ख मुझसे नहीं देखा जाता।' वात्सल्य के ऐसे अनेक प्रसंगों से भरा हुआ आपका जीवन हमें साधर्मी वात्सल्य का महान उपयोगी संदेश और प्रेरणा देता है।

(५) कादव समान कुतर्कों के सामने उन्होंने भगीरथ पुरुषार्थ करके जो मार्ग निकाला है, वह ऐसे पुरुषार्थ की गगनभेरी सुनाता है कि—पुरुषार्थी जीव चाहे जैसी परिस्थिति में से अपना मार्ग निकाल लेता है... चाहे जैसी विकट स्थिति में भी वह उलझकर बैठा नहीं रहता, किंतु पुरुषार्थ द्वारा आत्महित के मार्ग में निर्भयरूप से लग जाता है। आत्मा का सच्चा शोधक किसी भी प्रकार अपना मार्ग निकाल लेता है।

(६) परिवर्तन के बाद बरसनेवाली निंदा और आक्षेपों की झड़ियों तथा अनेक प्रकार की प्रतिकूलताओं के बीच भी जिस निडरता से उन्होंने सत्मार्ग पर प्रयाण किया, वह ऐसी प्रेरणा देता है कि—अपने आत्महित के मार्ग पर प्रयाण करते हुए तुझ पर जगत के नासमझ लोग चाहे जिसप्रकार के भीषण आक्षेप करें या निंदा की झड़ियाँ बरसायें, तब भी तू डरना नहीं... अपना मार्ग तू नहीं छोड़ना... निडरता से अपने आत्महित के मार्ग पर चलते जाना। वीर का मार्ग शूरवीर का है।

(७) आपमें निडरता की भाँति सहनशीलता भी भारी है। अनेकों बार उत्तेजना के प्रसंग आने पर घबराये बिना, शांतचित्त से उन्होंने धैर्य एवं गंभीरता द्वारा उन प्रसंगों को जीत लिया है। उनकी इस शैली से कई घोर विरोधी भी मुग्ध हो गये हैं। इसप्रकार आपका जीवन हमें कैसी भी विषम परिस्थिति में सहनशीलता और धैर्य का पाठ पढ़ाता है।

(८) आपने अपने अंतर से जो निर्णय किया, उसमें वे इतने अडिग रहते हैं कि—चाहे जैसी प्रतिकूल स्थिति आ जाने पर भी वे अपने निर्णय से चलायमान नहीं होते। उनका जीवन हम जैसे उपजीवियों को संदेश देता है कि—अपने आत्महित के मार्ग का ऐसा दृढ़ निश्चय करना कि देव भी न डिगा सकें और शरीर का अंत होने पर भी मार्ग के संस्कार न छूटें।

(९) पूज्य स्वामीजी की आत्म-धुन ऐसी है कि उसके लिये उनका जीवन सतत चिंतनशील रहा है। वर्षों पूर्व वींछिया के वटवृक्ष जैसे निर्जन एकांत में समय का अधिकांश स्वाध्याय-चिंतन में बिताते थे और मात्र एकबार आहार लेते थे। आत्मधुन ऐसी कि अन्य कार्यों में समय लगाना जानते ही न थे। उनका सारा जीवन हमें हचमचाकर कहता है कि तू सच्ची आत्मधुन लगा और अन्य कार्य एक ओर रख दे। निष्प्रयोजन कार्यों में समय बिताना आत्मार्थी को योग्य नहीं है।

(१०) आत्मकल्याण साधने की उत्कट अभिलाषा का बल उन्हें नित्य ज्ञानानुगामी वैराग्यमार्ग पर ले गया... और इसीलिये वे बचपन से ब्रह्मचारी रहकर संसार से अलिप्त रहे, इतना ही नहीं, परंतु लाखों लोगों में महान प्रतिष्ठा प्राप्त करने पर भी तथा शास्त्रों में पारंगत होने पर भी, उनमें कहीं वे संतुष्ट नहीं हुए और आत्मसाधना के मार्ग पर ही आगे बढ़े... ऐसा उनका जीवन ब्रह्मचर्य और वैराग्य मार्ग की प्रेरणा देकर कहता है कि हे भाई! यदि तुझे आत्महित साधना हो तो अन्यत्र कहीं तू संतुष्ट मत होना।

(११) उनकी गुरु-भक्ति और तत्त्वनिर्णय की शक्ति हमें भी गुरु-भक्ति एवं तत्त्वनिर्णय की शक्ति का संदेश दे रही है।

(१२) उनके शुभहस्त से हुई तीन सौ से अधिक जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा, तथा अति भक्तिपूर्वक की हुई सम्मेदशिखरजी, बाहुबलि (श्रवणबेलगोला), कुन्दकुन्दधाम (पौन्नूर) आदि तीर्थों की यात्रा हमारे जीवन में जिनेन्द्रभक्ति के प्रति तथा साधक संतों और उनकी पावन साधनाभूमि (तीर्थभूमि) के प्रति भक्ति का सिंचन करके आराधना का उत्साह जागृत करती है।

(१३) सतत अप्रमादरूप से शास्त्रस्वाध्याय, चिंतन-मनन में वर्तता हुआ उनका उपयोग और मात्र आत्मा की आराधना के हेतु ही बीतता हुआ उनका जीवन हमें अप्रमादरूप से आत्म-आराधना करने का स्वर्णिम संदेश दे रहा है।

उन्हीं के दिव्य जीवन से प्राप्त होनेवाली ऐसी आत्महितकारी प्रेरणाएँ झेलकर हम गुरुदेव के जन्म को अपने महान कल्याण-मंगल का कारण बनाएँ, यही गुरुदेव का सच्चा जन्मोत्सव है। उन्हीं के पावन जीवन को ध्येयरूप से रखकर, उनकी निकट छाया में निवास करने से जीवन के दु:ख दूर भागते हैं और आत्मार्थिता के सौरभ से जीवनपुष्प खिल उठता है। गुरुदेव के उपकारों के स्मरणमात्र से आत्मा के असंख्य प्रदेशों में भक्ति के स्वर गूँज उठते हैं कि:—

हे नाथ! इस शिशु पर तुम्हारी, छत्रछाया अमर हो....
छूटे न कभी सुयोग यह, जीवन के तुम आधार हो...
तब अमृतदृष्टि झेलकर अरु ध्यान चरणों का लगा...
प्राप्ति करूँ निज आत्म की, संसार की माया भगा...

मंगल वर्धन जिनवाणी

मंगल वर्धन जिनवाणी आईजी, आनंद वर्धन प्रभुवाणी आईजी।
कर्ता पर का बन रहाजी, तन धन जन अपनाय।
कर्तृत्वमद बेहद छायोजी ॥ २ ॥
पर मुह तकता तोह में जी, मान्यो है सुख परमांय।
दुखद वर्धन दुर्मति छाईजी ॥ २ ॥
पर कोई अपना ना हुवे जी, व्यर्थ ही सर्व उपाय।
मर्यादा स्व-पर अंतस् ल्यावोजी ॥ २ ॥
निज निज कर्ता दीखताजी, कर्तुमद जावेजी विलाय।
सुखद वर्धन श्रुतमति छाईजी ॥ २ ॥
समझ स्वयं निज काम की जी, और नहीं आवे काम।
समझ निज आतम ल्यावोजी ॥ २ ॥
लक्ष आत्म का राखतां जी, समझ स्वयं सुलटाय।
आनंदघन निजघर आवो जी, मंगल वर्धन जिनवाणी आईजी।

[सरदारशहर निवासी परम पवित्र धर्मरत्न,
आत्मार्थी श्री दीपचन्दजी सेठियाजी की नोंध बुक से साभार उद्धृत]

आत्मानुभव होने पर....

[जब जीव को आत्मा का अनुभव होता है, तब उस महाभाग साधक-संत की परिणति कैसी होती है ?—उसका वैराग्य, उसका आनंद, उसकी दृढ़ता तथा उसकी भवअंत की निकटता आदि का वर्णन श्री भागचंदजी ने अपने इस पद में किया है:—]

आतम अनुभव आवे, जब निज आतम अनुभव आवे;
और कछू न सुहावे, जब निज आतम अनुभव आवे... जब० १

जिन आज्ञा अनुसार प्रथम ही, तत्त्व प्रतीति अनावे;
वरणादिक रागादिक तैं निज, चिह्न भिन्न कर ध्यावे... जब० २

मतिज्ञान फरसादि विषय तजि, आतम सनमुख धावे;
नय प्रमाण निक्षेप सकल श्रुत, ज्ञान विकल्प नशावे... जब० ३

चिद्ऽहं, शुद्धोऽहं इत्यादिक, आप माँहिं बुधि आवे;
तनपै व्रजपात गिरते हू नेक न चित्त डुलावे... जब० ४

स्वसंवेदन आनंद बढ़ै अति वचन कह्यो नहिं जावे;
देखन जानन चरन तीन बिच, एक स्वरूप लहरावे... जब० ५

चित करता चित कर्म भाव चित, परिणति क्रिया कहावे;
साध्य-साधक ध्यान-ध्येयादिक भेद कछू न दिखावे... जब० ६

आत्म प्रदेश अदृष्ट तदपि, रसस्वाद प्रगट दरसावे;
ज्यों मिसरी दीसत न अंध को सपरस मिष्ट चखावे.. जब० ७

जिन जीवनिके संसृति, पारावार पार निकटावे;
'भागचंद' ते सार अमोलक परम रतन वर पावे... जब० ८

(धन्य है यह अनुभव दशा!)

'श्री बाहुबली भगवान की जय हो... आनंदामृत की जय हो'

भगवान श्री बाहुबली की यात्रा के हर्षोल्लास समय, बाहुबली भगवान के सन्मुख परम विनय से बैठे-बैठे श्री कानजी स्वामी ने उपरोक्त हस्ताक्षर लिख दिये थे, उससे बाहुबली भगवान के दर्शन समय का उनका प्रमोद और उल्लास आपको समझ में आया होगा; दिन में और रात्रि को (सर्च लाइट के प्रकाश में) बार-बार श्री बाहुबली प्रभु के दर्शन करते बहुत बहुमान से स्वामीजी कहते थे कि वाह!! इनकी मुखमुद्रा पर तो देखो... कैसा अलौकिक निर्मलभाव प्रगट हो रहा है!! पुण्य का अतिशय और पवित्रता भी अलौकिक... दोनों दिख रहे हैं। ज्ञान अंतर में ऐसा लीन हुआ है कि बाहर आने का समय नहीं... वीतरागभाव में ज्ञान लीन हुआ है, अनंत गुणों से समृद्ध ऐश्वर्ययुक्त मुख के ऊपर अनंत आश्चर्यमय वीतरागता है... मानों चैतन्य की शीतलता का हिमालय... वर्तमान जगत् में यह अनुपम है।

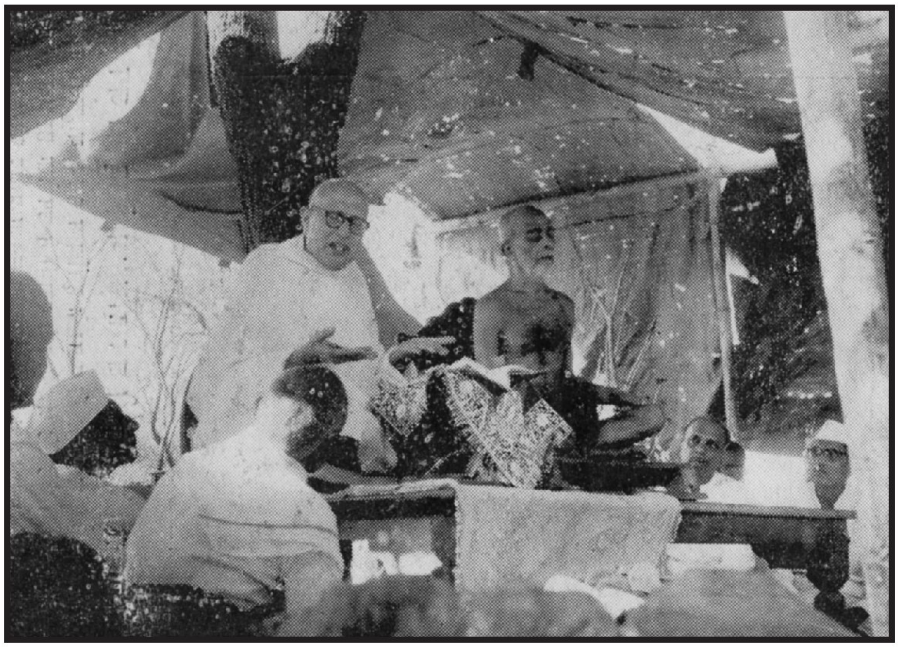

वाह!! धन्य वो मुनिदशा! कुन्थलगिरि सिद्ध क्षेत्र में

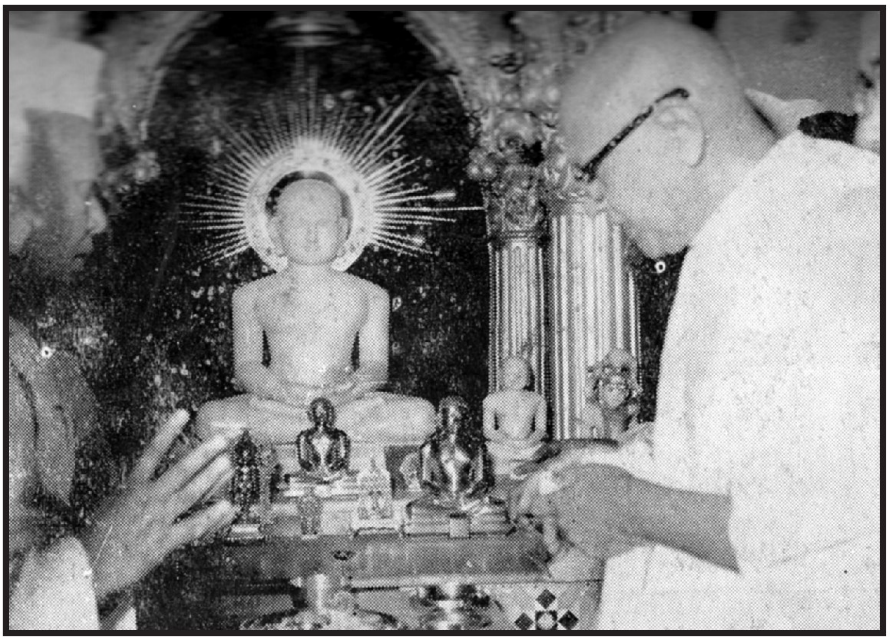

श्रद्धेय कानजी स्वामी श्री मद्रास दि० जैन मन्दिर में दर्शन कर रहे हैं।

सौराष्ट्र का गौरव गिरनार गिरि

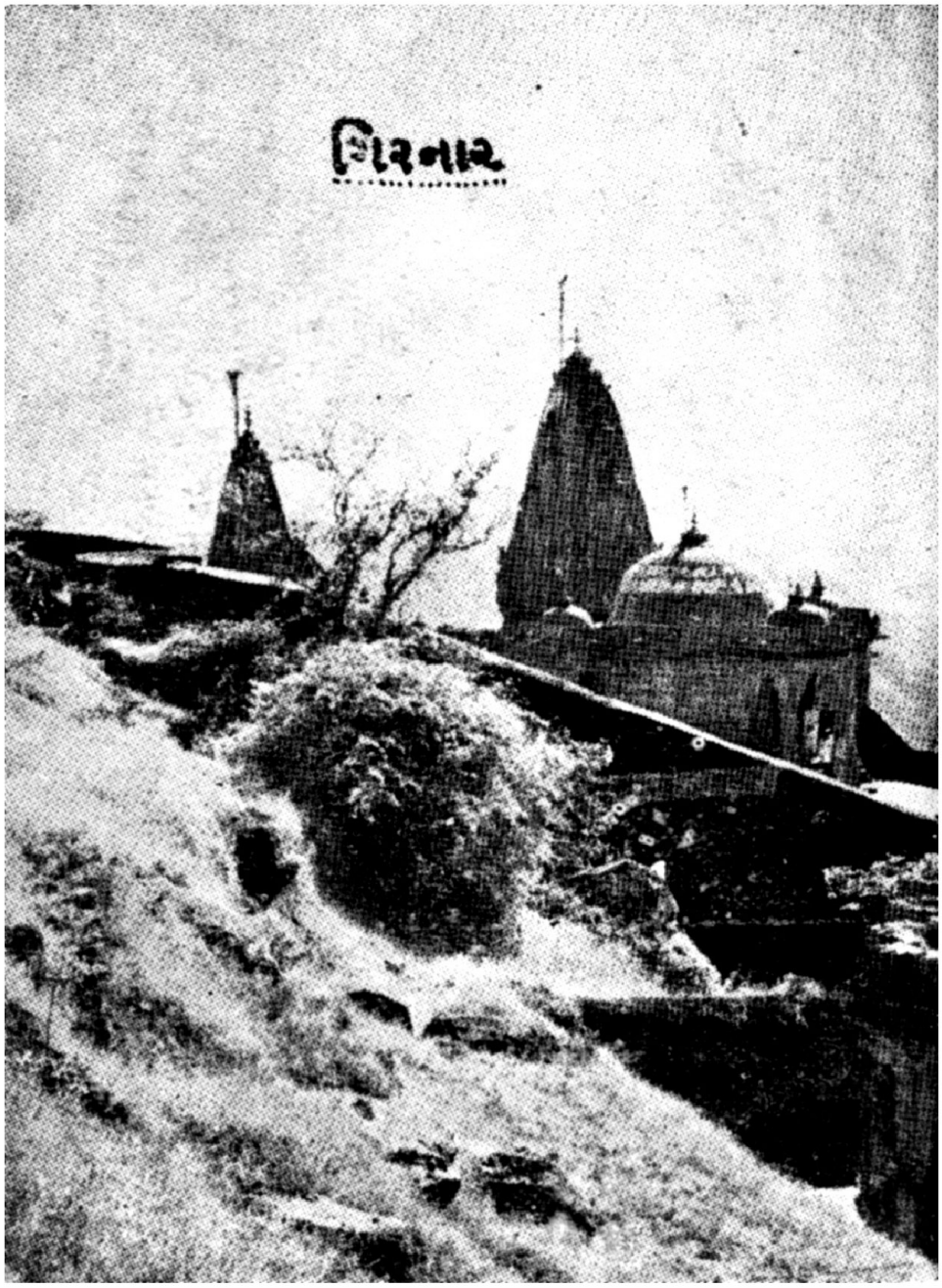

जहाँ गूँज रहे हैं सन्तों की आत्म-साधना के रणकार (-झंकार)

श्री धरसेनाचार्य गिरनार

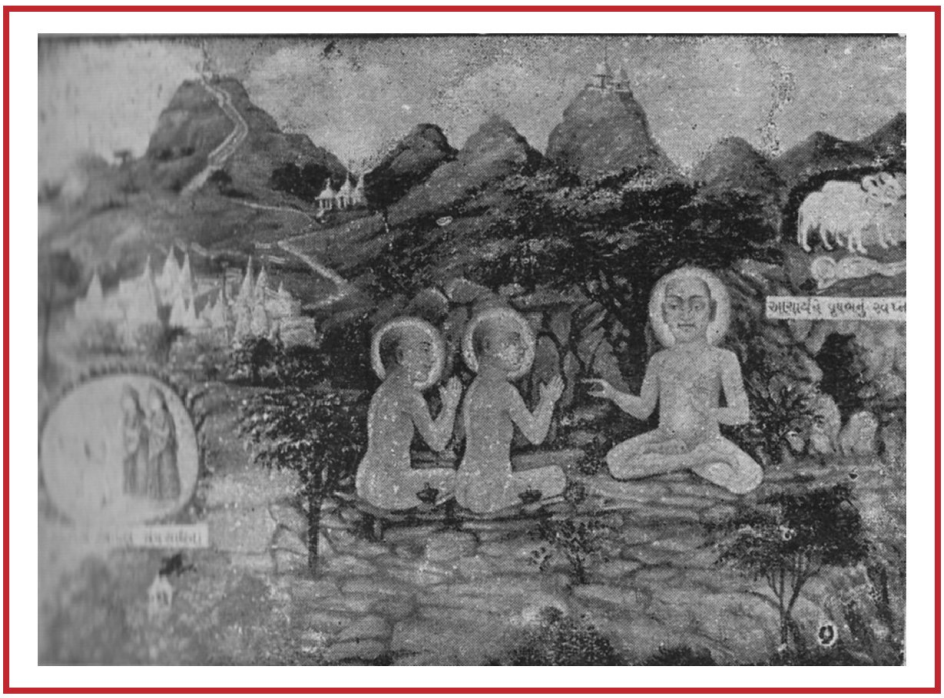

श्री धरसेनाचार्यदेव श्री पुष्पदन्त तथा श्री भूतबलि दो मुनिवरों को
षट्खंडागम (कर्मप्रवाद पूर्व - अग्रायणी पूर्व)
का ज्ञान दे रहे हैं।

★ ★ ★

श्रीमत्परमगंभीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

अर्थ — जो अनेक अंतरंग और बहिरंग लक्ष्मियों से भरपूर हैं और अत्यन्त गम्भीर स्याद्वाद ही जिसका सार्थक चिह्न है, ऐसे श्री त्रैलोक्यनाथ का शासन श्री जैन शासन चिर काल तक जीवित रहो।

द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र

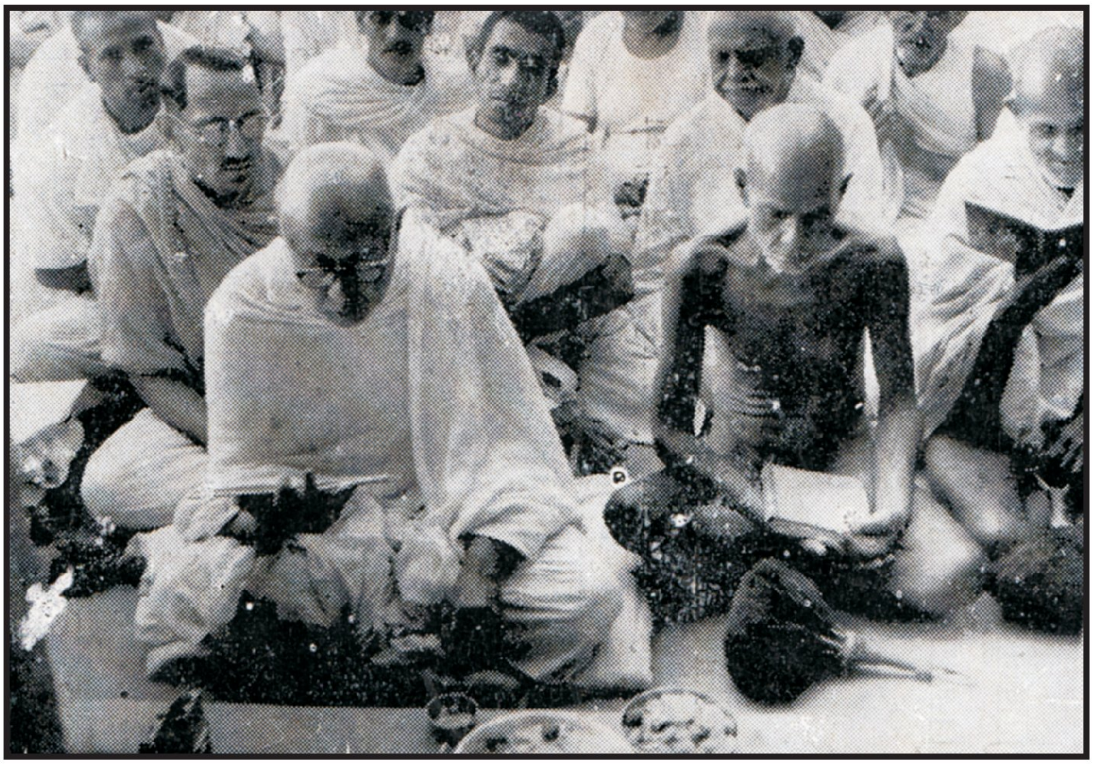

वि०सं० २०१५ चैत्र सुदी १२ के दिन पहाड़ के ऊपर २६ जिन मंदिरों की वंदना-दर्शन-पूजन करके अंतिम मंदिरजी में आये, बड़ी गहरी गुफा में श्री गुरुदत्त मुनिराज घोर उपसर्ग सहकर शुक्लध्यान द्वारा मुक्ति पधारे। यह सिद्धक्षेत्र है सामने विशाल चौक है, इस अतीव शांत महामनोज्ञ मुनिधाम में यात्रीगण, एक मुनिराज तथा क्षु० चिदानंदजी आदि त्यागीगण सहित कानजी स्वामी श्री गुरुदत्त मुनि भगवंत के चरणों की पूजन के बाद भक्ति कर रहे हैं, बाद स्वामीजी भक्ति पाठ गवा रहे हैं —

धन्य मुनिश्वर आतम हित में छोड़ दिया परिवार....

कि तुमने, छोड़ा सब संसार।

जब तीर्थयात्रा करके सुवर्णपुरी में स्वामीजी पधारे उस दिन....

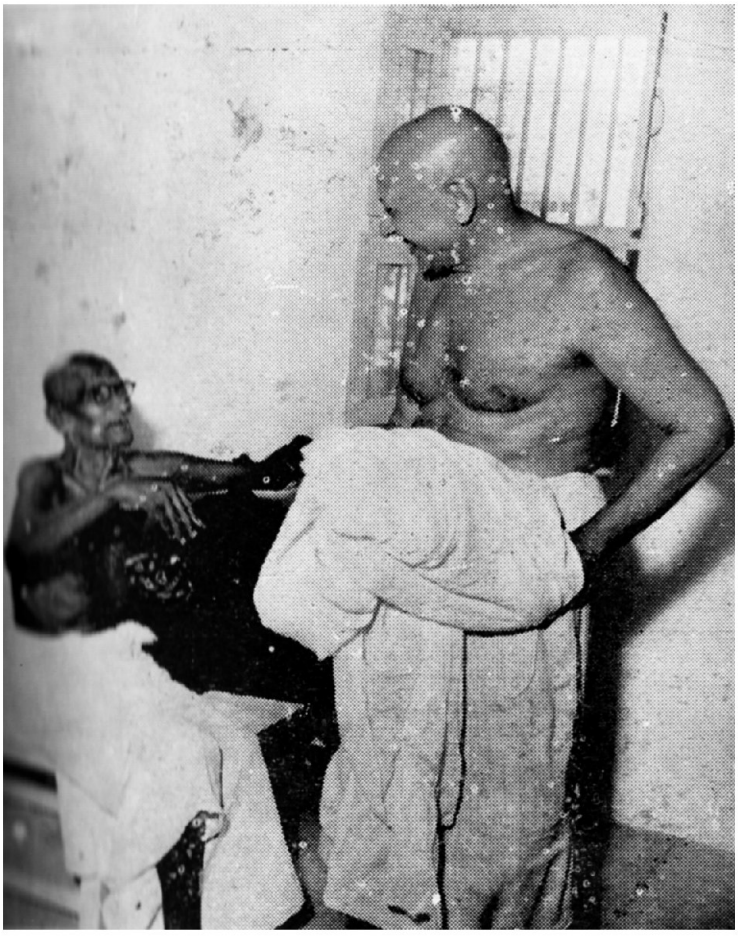

आपके साथीदार शिष्य जो ३० साल पूर्व श्वेताम्बर साधु थे, गुरु-शिष्य के भाव-भीने मिलन का एक मधुर दृश्य

★ ★ ★

वृद्ध शिष्य के उद्‌गार..... ''पधारिये... गुरुदेव...! आपने तो अलौकिक धर्म प्रभावना.... तीर्थयात्रा की, अहा! .....उस पावन सम्मेदशिखरजी आदि यात्रा की क्या बात.... क्या महिमा....''

सीमंधरनाथ के दर्शन

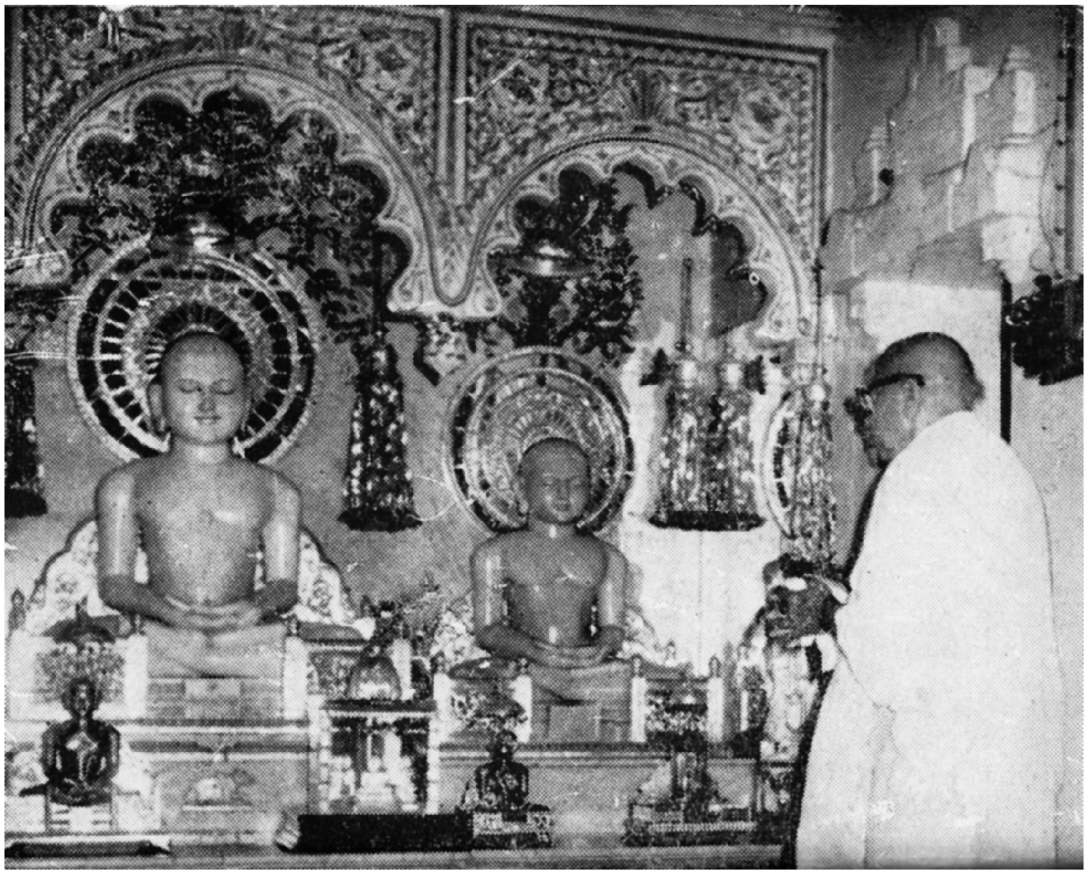

सुवर्णधाम सोनगढ़ में पूज्य कानजी स्वामी प्रत्येक दिन भक्तिपूर्वक
विदेहनाथ सीमंधर प्रभु का दर्शन करते हैं।

विश्व वंदनीय-धर्म-साम्राज्य नायक आदि तीर्थंकर

भगवान श्री ऋषभदेव

[सम्यक्मति-श्रुत और अवधि वे तीनों ज्ञान सहित और शांत व वैराग्यभावसह भगवान श्री ऋषभदेव अयोध्या में रहते थे और सरल तथा भ्रद प्रजा पर अनुग्रह कर निर्दोष आजीविका के उपाय बताते थे। बाद में देवों और नगरजनों ने बड़े हर्ष से भगवान का राज्याभिषेक किया था और भगवान का राज्य व्यवस्था में बड़ा भारी समय व्यतीत हो गया था। भगवान राज्य और भोगों से किसप्रकार विरक्त होंगे, यह विचार कर इन्द्र ने एक उपाय किया... कौन सा उपाय...? जानने के लिये श्री जिनसेन आचार्य कृत श्री महापुराण के आधार से लिखी गई यह लेखमाला पढ़िये।]

(गतांक २६९ से आगे)

भगवान ऋषभदेव ने अपने शासनकाल में रक्षा करनेवाला क्षत्रिय, व्यापार आदि करनेवाला वैश्य और दूसरों की सेवा करनेवाला शूद्र ऐसे तीन वर्ण विभाग किये थे और विवाह आदि की व्यवस्था करने के पहले छह कर्मों की व्यवस्था कर दी थी। भगवान ने दूसरे बलवान क्षत्रियों को बुलाकर उनमें से किसी को महामंडलीक और किसी को अधिराज बनाये थे। इसीप्रकार भगवान ने अपने पुत्रों के लिये भी यथायोग्य रूप से महल, सवारी तथा अन्य अनेक प्रकार की संपत्ति का विभाग कर दिया था। भगवान ने इक्षु का रस संग्रह करने का उपदेश दिया था। इसलिये जगत के लोग उन्हें इक्ष्वाकु कहने लगे थे। भगवान ऋषभदेव को इन्द्र उनके विशाल पुण्य के संयोग से भोगोपभोग की सामग्री भेजता रहता था। जिसप्रकार बीज के बिना अंकुर उत्पन्न नहीं होता; उसीप्रकार पुण्य के बिना (लौकिक) सुख नहीं होता, दान देना-इन्द्रियों को वश करना, संयम धारण करना, सत्य भाषण करना, लोभ का त्याग करना, और क्षमाभाव धारण करना आदि शुभ चेष्टाओं से अभिलषित पुण्य की प्राप्ति होती है। इसलिये हे पंडितजनों! धर्म करो (निज ज्ञायकस्वरूप का आलंबनरूप धर्म) क्योंकि धर्म से मोक्ष प्राप्त होता है और साथ में होनेवाले शुभभाव से लौकिक सुख और स्वर्ग संपदाऐं मिलती हैं; इसलिये हर्षित होकर श्रेष्ठ मुनियों के लिये दान देना, जिनेन्द्र भगवंतों को नमस्कार कर उनकी पूजा करना, शीतव्रतों का पालन करना और पर्व

के दिनों में उपवास करना आदि पुण्य-बंध के कारण हैं, ऐसा जानो।

दीक्षा कल्याणक की पूर्व भूमिका

एक दिन सिंहासन पर विराजमान भगवान की सेवा करने के लिये इन्द्र अप्सराओं और देवों के साथ, पूजा की सामग्री लेकर वहाँ आया और राज्य दरबार में नृत्य करना प्रारंभ किया। भगवान राज्य और भोगों से किसप्रकार विरक्त होंगे, यह विचार कर इन्द्र ने उस समय नृत्य करने के लिये एक ऐसे पात्र को नियुक्त किया था कि जिसकी आयु अत्यंत क्षीण हो गयी थी। तदनंतर वह अत्यंत सुंदरी नीलांजना नाम की देव नर्तकी रस भाव और लय सहित फिरकी लगाती हुई नृत्य कर रही थी कि इतने में ही आयुरूपी दीपक के क्षय होने से वह क्षण भर में अदृश्य हो गई। उसके नष्ट होते ही इन्द्र ने रसभंग के भय से उस स्थान पर उसी के समान शरीरवाली दूसरी देवी खड़ी कर दी, जिससे नृत्य ज्यों का त्यों चलता रहा, तथापि भगवान ऋषभदेव ने उसी समय उसके स्वरूप का अंतर जान लिया था। तदनंतर भोगों से विरक्त और अत्यंत संवेग तथा वैराग्यभावना को प्राप्त हुए। भगवान के चित्त में इसप्रकार चिंता (भावना) उत्पन्न हुई कि यह जगत विनश्वर है, लक्ष्मी बिजलीरूपी लता के समान चंचल है, यौवन, शरीर आरोग्य और ऐश्वर्य आदि सभी चलाचल है। रूप की शोभा संध्या काल की लाली के समान क्षण भर में नष्ट हो जानेवाली है। आयु की स्थिति घटी यंत्र के जल की धारा के समान शीघ्रता के साथ गलती जा रही है तथा यह शरीर अत्यंत दुर्गंधित तथा घृणा उत्पन्न करनेवाला है। यह निश्चय है कि इस संसार में सुख का लेश मात्र भी दुर्लभ है और दुःख बड़ा भारी है, फिर भी आश्चर्य है कि मंद बुद्धि पुरुष उसमें सुख की इच्छा करते हैं। यह जीव स्थावर और त्रसपर्याय में भ्रमण करते मोहवश अनेक दुःख भोगते हैं और चारों गति में कष्ट पाते हैं। देखो यह अत्यंत मनोहर स्त्री रूपी यंत्र (नीलांजना अप्सरा) हमारे साक्षात् देखते ही देखते किसप्रकार नाश को प्राप्त हो गयी। बाहर से उज्जवल दिखनेवाले स्त्री के रूप को अत्यंत मनोहर मानकर उसमें कामीजन पड़ते हैं और पड़ते ही पतंगों के समान नष्ट हो जाते हैं। इसलिये राज्य, शरीर और भोग-भावना को धिक्कार है। यह सुंदर और बलवान शरीररूप गाड़ी तीन चार दिन में ही उलट जायेगी—नष्ट हो जायेगी, इसमें कोई सार वस्तु नहीं है! साररूप एक चैतन्य निज ज्ञायकमात्र आत्मा ही है। ऐसी श्रद्धा सह उसी में स्थिर होकर वीतरागभाव रूप चारित्र ही धारण करना चाहिये। इसप्रकार जिनकी आत्मा विरक्त हो गई है, ऐसे भगवान ऋषभदेव भोगों से विरक्त हुए और काललब्धि को पाकर शीघ्र ही मुक्ति के लिये उद्योग करने लगे। और नित्य-शरणरूप

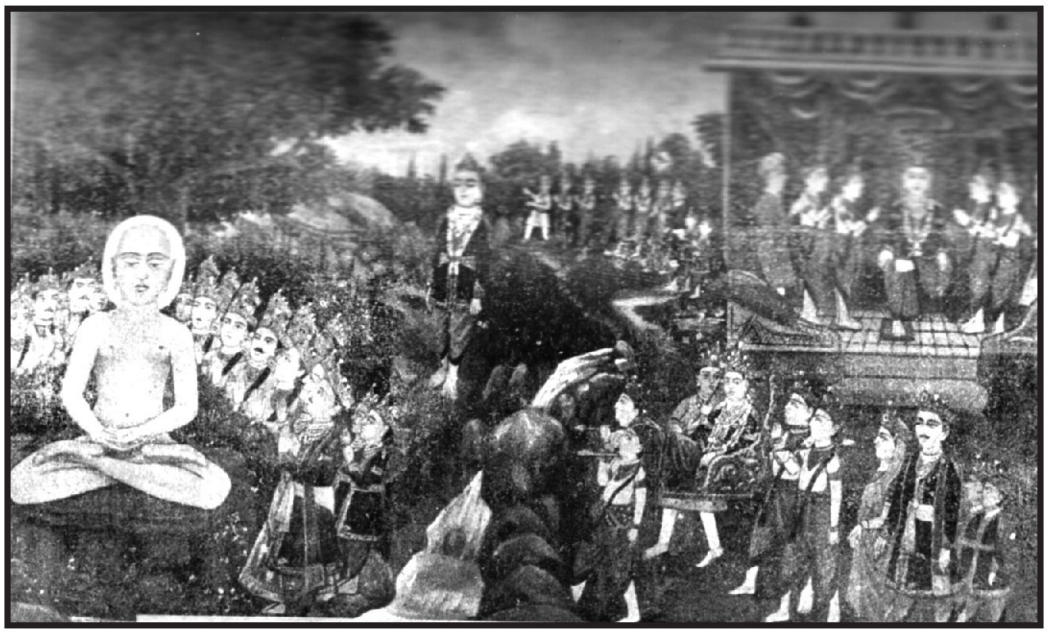

श्री भगवान ऋषभदेव का दीक्षा कल्याणक प्रसंग

नियतस्वरूप को ही सामने-दृष्टि में रखकर अनित्व, अशरण, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि आदि बारह भावना भाते थे। उसी समय भगवान को प्रबोध कराने के लिये और उनके तप-कल्याणक की पूजा करने के लिये लौकांतिक देव ब्रह्मलोक से उतरे, उन लौकांतिक देवों ने कल्पवृक्षों के फूलों से भगवान के चरणों की पूजा की और फिर अर्थ से भरे हुए स्तोत्रों से भगवान की स्तुति करना प्रारंभ की। हे भगवान! आपने तप धारण करने का विचार किया है, वह भाई की तरह भव्य जीवों को सहायता करनेवाला है। हे देव! यह समस्त जगत मोहरूपी बड़ी भारी कीचड़ में फँसा हुआ है, उसे आप हस्तावलंबरूप हो। हे देव! आप स्वयंभू हैं, आपने मोक्षमार्ग को स्वयं जान लिया है और आप हम सबको मुक्ति के मार्ग का उपदेश देंगे, इससे सिद्ध होता है कि आपका हृदय बिना कारण ही करुणा से आर्द्र है। हे भगवन्! आप स्वयंबुद्ध हैं, आप मति-श्रुत और अवधिज्ञानरूपी तीन निर्मल नेत्रों को धारण करनेवाले हैं तथा आपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र इन तीनों की एकतारूपी मोक्षमार्ग को अपने आप ही जान लिया है, इसलिये आप स्वयंबुद्ध हो। हमारे जैसे देवों से प्रबोध कराने के योग्य नहीं हैं, तथापि हम लोगों का यह नियोग ही आज हम लोगों को वाचालित कर रहा है। हे देव! हम पर कृपा कीजिये और अनादि प्रवाह से चला आया

काल अब आपके धर्मरूपी अमृत उत्पन्न करने के योग्य हुआ है, इसलिये हे विधाता (भगवान)! धर्म की सृष्टि कीजिये। इसप्रकार स्तुति करने के बाद भगवान ऋषभदेव ने दीक्षा धारण करने में अपनी दृढ़ बुद्धि लगाई और लौकांतिक देव स्वर्ग चले गये। आसन कांपने से और अवधिज्ञान से जानकर इन्द्र आदि देव लोग भगवान का तपकल्याणक मनाने के लिये स्वर्ग से नीचे आये। भगवान ऋषभदेव ने साम्राज्यपद पर अपने बड़े पुत्र भरत को तथा युवराज पद पर युवान बाहुबली को स्थापित किया और राज्य-वैभव योग्यरीति से सब पुत्रों को बाँट दिया था।

दीक्षा कल्याणक

तदनंतर-अविनाशी भगवान ऋषभदेव, नाभिराय आदि परिवार के लोगों से पूछकर इन्द्र के द्वारा बनाई हुई सुंदर सुदर्शन नाम की पालकी पर बैठे। अनेक वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो रहे हैं ऐसे भगवान ऋषभदेव पालकी में आरूढ़ हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों तपस्वी लक्ष्मी के उत्तम वर ही हों। भगवान की उस पालकी को प्रथम ही राजा लोग सात पेंड तक ले चले और फिर विद्याधर लोग आकाश में सात पेंड तक ले चले। तदनंतर वैमानिक और भवनवासी आदि देवों ने अत्यंत हर्षित होकर वह पालकी अपने कंधों पर रखी और शीघ्र ही उसे आकाश में ले गये। उस समय स्वयं इन्द्र भगवान की पालकी ढो रहे थे। और भगवान ऋषभदेव समस्त संसार को आनंदित करते हुए दिव्य पालकी पर आरूढ़ होकर अयोध्यापुरी से बाहर निकले। उस समय नगर निवासी लोग उनकी इसप्रकार स्तुति कर रहे थे। हे जगन्नाथ, आप कार्य की सिद्धि के लिये जाइये, आपका मार्ग कल्याणमय हो। आप हमारी रक्षा कीजिये और हम पर अनुग्रह कीजिये। बाद में नगरजन आपस में बातचीत कर रहे थे कि जिसप्रकार अपनी इच्छानुसार विहार करनेरूप सुख की इच्छा से मत्त हाथी वन में प्रवेश करता है, उसीप्रकार भगवान ऋषभदेव भी स्वाधीन सुख प्राप्त करने की भावना से वन में प्रवेश करना चाहते हैं और देवलोग उन्हें वन में ले जा रहे हैं।

तदनंतर भगवान के पीछे-पीछे अंत: पुर की रानियाँ तथा नगरजन आदि जा रहे थे और विरह के कारण रो रहे थे। भगवान को किसी प्रकार की व्याकुलता न हो, यह विचार कर उनके साथ जानेवाले वृद्ध पुरुषों ने यह भगवान की आज्ञा है, ऐसा कहकर किसी स्थान पर सबको रोक दिया था। अब भगवान अत्यंत विशाल सिद्धार्थक नाम के वन में जा पहुँचे, इन्द्र की सेना भी वहाँ आ पहुँची। उस वन में अत्यन्त पवित्र उत्तम घर के लक्षणों सहित है ऐसी उस शिला पर देवों द्वारा पृथ्वी पर रखी गई। पालकी से भगवान ऋषभदेव उतरे। तदनंतर क्षणभर उस शिला पर आसीन

होकर मनुष्य, देव तथा धरणेन्द्रों से भरी हुई उस सभा को यथायोग्य उपदेशों के द्वारा सम्मानित किया। बाद में लोग दूर चले गये और जिन्होंने अंतरंग और बहिरंग परिग्रह छोड़ दिया और परिग्रह रहित रहने की प्रतिज्ञा की है, ऐसे उन भगवान ऋषभदेव ने यवनिका (पर्दा) के भीतर मोहनीय कर्म को नष्ट करने के लिये वस्त्र, आभूषण तथा माला वगैरह का त्याग किया। तदनंतर भगवान ने पूर्व दिशा की ओर मुँह कर पद्मासन से पंच मुष्टियों में केश लौंच किया। धीर वीर भगवान ऋषभदेव ने मोहनीय कर्म की मुख्य लताओं के समान बहुत सी केशरूपी लताओं का लौंच कर दिगम्बर रूप के धारक होते हुये जिनदीक्षा धारण की, सामायिक चारित्र धारण किया और व्रत, तप, समिति आदि ग्रहण किये। वह दिन चैत्रमास की कृष्ण पक्ष की नवमी का था। भगवान के केश इन्द्र ने प्रसन्नचित्त होकर रत्नों के पिटारे में रख लिये थे और बड़ी विभूति के साथ ले जाकर उन्हें क्षीर समुद्र में डाल दिया। उसी समय चार हजार अन्य राजाओं ने भी दीक्षा धारण की थी। वे राजा भगवान का मत (अभिप्राय और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का सच्चा स्वरूप) नहीं जानते थे, केवल स्वामिभक्ति से प्रेरित होकर वे मूढ़ता के साथ मात्र द्रव्य की अपेक्षा नग्न हुए थे, भावों की अपेक्षा नग्न नहीं हुए थे। भगवान ऋषभदेव तो दीक्षा धारण कर मौन धारणकर मोक्ष प्राप्ति के लिए स्थिर हुए थे। महासंतोषी और वीर भगवंत छह महीने के उपवास की प्रतिज्ञा कर जंगल में विराजते थे। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी दैदीप्यमान रत्नों से अलंकृत भगवान का दीक्षारूपी धन परम सुख दे रहा था और बड़े आनंद से स्वरूप में धीरता-वीरतारूप विश्रांति से प्रतापवंत होकर इच्छा निरोधरूप तप में आरूढ़ रहते ऐसे भगवान ऋषभदेव मुनिदशा में वन में विराजमान हुए थे।

बाद में इन्द्र और भरत चक्रवर्ती आदि ने वन में जाकर बड़े हर्ष से मोहविजेता भगवान ऋषभदेव की अष्ट प्रकार से पूजा की और अनेक मंगल सूत्रों द्वारा स्तुति की थी। (क्रमशः)

अच्छिन्न ज्ञानधारा

❀ जिसने अपूर्व पुरुषार्थ से भेदज्ञान प्रगट किया है, ऐसे ज्ञानी का ज्ञान रागादिक से पृथक् ही परिणमित होता है। उसका ज्ञान कभी राग के साथ एकाकार नहीं होता; उसकी ज्ञानधारा अप्रतिहत भाव से आगे बढ़कर केवलज्ञान में मिल जाती है।

❀ चिदानंदस्वभाव की ओर उन्मुख हुआ ज्ञानी का भाव, ज्ञान से ही निर्मित है। वह भाव, राग-द्वेष-मोह रहित है। जहाँ स्वभावपरिणमन हुआ, वहाँ विभावपरिणमन क्यों होगा ?

❀ जहाँ राग से पृथक् होकर उपयोग अंतरोन्मुख हुआ, वहाँ वह उपयोग स्वयं रागादि भावों के अभावस्वरूप ही है; राग को छोड़ दूँ—ऐसा भी उसमें शेष नहीं रहा।

❀ भेदज्ञानरूपी बिजली गिरने से ज्ञान और राग की एकता टूट गई, तो वह फिर कभी नहीं जुड़ सकेगी। 'मेरी परिणति पुनः राग में एकाकार होगी'—ऐसी शंका ज्ञानी को कभी नहीं होती।

❀ अहा, अंतर में भेदज्ञान द्वारा जहाँ परमात्मा में भेंट हुई, वहाँ अब पामर समान विभाव भावों के साथ कौन संबंध रखेगा ? राग से भिन्न ज्ञानधारा उल्लसित हुई, अब परमात्मपद से भेंट होगी ही।

❀ देखो तो, स्वभावदृष्टि का बल! पंचमकाल के मुनिराज ने भी क्षायिक समान अप्रतिहत धारावाही भेदज्ञान की आराधना बतलायी है।

❀ ज्ञानी की ज्ञानधारा के बीच आस्रव नहीं है। अहा, ऐसे ज्ञान का अंतर में वीरतापूर्वक स्वीकार होना चाहिये। ज्ञान की उग्रधारा से जो मोह का नाश करने के लिये उद्यत हुआ, उसके पैर डगमगाते नहीं हैं, उसे अपने पुरुषार्थ में संदेह नहीं आता। वह वीरता की हुंकार सहित मोक्ष साधने को चला है... उसकी ज्ञानधारा बीच में छिन्न नहीं होती।

❀ एक बार परिणति अंतर्मुख होकर चैतन्य में एकाकार तथा राग से पृथक् हुई, फिर उसमें सदैव ज्ञानमय अबद्धस्पृष्ट परिणमन वर्तता ही रहता है; उस परिणमन में राग पृथक् का पृथक् ही रहता है।

❀ अरे,ऐसी चैतन्यानुभूति की कितनी महिमा है ! और ऐसा अनुभव करनेवाले धर्मात्मा की क्या स्थिति है !! उसकी लोगों को खबर नहीं है। ऐसे अनुभवी ने मोक्ष का मंडप रोप लिया है, उसे

बारह अंग पढ़ना पड़ें, ऐसा कोई नियम नहीं है; उसके अनुभव में बारहों अंग का सार समा गया है। बारह अंग के समुद्र में पड़ा हुआ चैतन्य रत्न उसने प्राप्त कर लिया है, उसके संसार का मूलोच्छेदन हो गया है।

❀ ज्ञानी के जो ज्ञानमय भाव प्रगट हुआ है, वह रागरहित है तथा वह ज्ञानमय भाव सर्व कर्मसमूह को रोकनेवाला है। इसप्रकार ज्ञान स्वयं संवररूप है, उसमें आस्रव का अभाव है।

भेदज्ञान की कहानी

अहा, जो ज्ञानी के मुख से अपूर्व उल्लासभाव सहित भेदज्ञान की कहानी सुनता है, उसका चैतन्य भंडार खुल जाता है। श्री पद्मनन्दिस्वामी कहते हैं कि:—

तत्प्रतिप्रीतिचित्तेन येन वार्ताऽपि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्माण भाजनम्।

चैतन्यस्वरूप आत्मा के प्रति चित्तपूर्वक उसकी कहानी भी जिसने सुनी है, वह भव्य जीव निश्चय से भावी निर्वाण का भाजन है।

तथा आदिनाथ भगवान की स्तुति में वे कहते हैं कि—हे भगवान! आपने केवलज्ञान प्रगट करके अपने चैतन्यनिधान तो खोल ही लिये, और दिव्यध्वनि द्वारा चैतन्यस्वभाव दर्शाकर जगत के जीवों के लिये भी आपने अचिंत्य चैतन्य भण्डार खोल दिया है। अहा, उस चैतन्य भण्डार के समक्ष चक्रवर्ती के निधान को भी तुच्छ जानकर कौन नहीं छोड़ेगा? राग को तथा राग के फलों को तुच्छ जानकर धर्मात्मा जीव अंतर्मुखरूप से चैतन्य भण्डार की साधना करता है। सम्यग्दर्शनादि समस्त निर्मल भावों के आदि में चैतन्य का ही अवलंबन है और अंत में भी चैतन्य का ही अवलंबन है। परन्तु ऐसा नहीं है कि सम्यग्दर्शन के प्रारम्भ में राग का अवलंबन हो! सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् मध्य में भी राग का अवलंबन नहीं है और पूर्णता के लिये भी राग की आवश्यकता नहीं होती। आदि-मध्य या अंत में किन्हीं भी निर्मल परिणाम का रागादि के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, उनसे

भिन्नता ही है। इसप्रकार निर्मल परिणामरूप से परिणमित ज्ञानी का विकार के साथ किंचित् कर्ताकर्मपना नहीं है।

एक ही काल में वर्तते हुए ज्ञान और राग में ज्ञान तो अंतरस्थित है और राग बाह्यस्थित है। ज्ञानी अंतरस्थित ऐसे अपने निर्मल परिणाम के कर्तारूप ही परिणमित होता है और बाह्यस्थित ऐसे रागादि के कर्तारूप नहीं किंतु ज्ञातारूप ही परिणमित होता है। ज्ञान-परिणाम तो अंतर्मुख स्वभाव के आश्रय से हुये हैं और रागपरिणाम तो बहिर्मुखवृत्तिपूर्वक पुद्गल के आश्रय से हुये हैं। जो आत्मा के आश्रय से हुए, उन्हें आत्मा का परिणाम कहा और पुद्गल के आश्रय से हुये, उन्हें पुद्गल का ही परिणाम कह दिया है। राग की उत्पत्ति आत्मा के आश्रय से नहीं होती, इसलिये राग वह आत्मा का कार्य नहीं है। ऐसे आत्मा को जानता हुआ ज्ञानी अपने निर्मल परिणाम का ही कर्ता है; उसके परिणाम का प्रवाह चैतन्यस्वभाव की ओर बहता है, राग की ओर उसका प्रवाह नहीं बहता। निर्मल परिणामरूप से परिणमित आत्मा, राग में तन्मयरूप से परिणमित नहीं होता। ज्ञानी के परिणमन में तो अध्यात्मरस उमड़ रहा है। चैतन्य के स्वच्छ महल में रागरूपी मैल कैसे आयेगा?

भेदज्ञान द्वारा झटक-झटककर राग को चैतन्य से अत्यन्त भिन्न कर दिया है। कैसा भिन्न कि जैसे परद्रव्य भिन्न हैं, उसीप्रकार राग भी चैतन्य से भिन्न है। ऐसे भेदज्ञान के बिना साधकपना होता ही नहीं। चैतन्य को और राग को स्पष्ट भिन्न जाने बिना किसकी साधना की जाये और किसे छोड़ा जाये—उसका निर्णय कहाँ से करेगा? तथा उसके निर्णय बिना साधकपने का पुरुषार्थ कहाँ से आयेगा? भेदज्ञान द्वारा दृढ़ निर्णय के बल का प्रयोग किये बिना साधकपने का—चैतन्य की ओर का पुरुषार्थ जागृत नहीं होता।

आराधक धर्मात्मा का अनुभव

सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा दूसरों को भी सम्यग्दृष्टि बनाता है।

[समयसार, गाथा ३८ के प्रवचन से]

अहा, जिसके अंतर में चैतन्यामृत का समुद्र छलक रहा है, आनन्दानुभव का सागर हिलोरें ले रहा है, ऐसे आराधक धर्मात्मा की यह बात है। वे धर्मात्मा ऐसा अनुभव करते हैं कि मैं शुद्धात्मा की अनुभूति से प्रतापवान हूँ। मैं समस्त पदार्थों से भिन्न और राग से भी पार, ऐसे अपने स्वानुभव से प्रतापवंत हूँ; मेरे स्वरूप से बाहर जगत के समस्त परद्रव्य अनेक प्रकार की सम्पदा द्वारा वर्त रहे हैं परंतु वे कोई पदार्थ मुझे अपनेरूप किंचित् भासित नहीं होते। मैं परमात्मा हूँ, एक परमाणुमात्र मेरा नहीं है। देखो, यह भेदज्ञान की सूक्ष्मता! जहाँ एक परमाणुमात्र को पृथक् किया, वहाँ उस परमाणु के संबंध से होनेवाले भावों से भी भिन्नता जान ली। अकेली चैतन्यसम्पदा का ही अपने अंतर में स्व-रूपपना से अवलोकन करते हैं। अहा, अंतर में शांत चैतन्यरस का सागर उमड़ रहा है, किंतु विकल्पों की ओट में वह ढँक गया है। जहाँ विकल्प से पृथक् होकर अंतर में गया, संपूर्ण चिदानंद सागर छलाछल भरा है, उसमें निमग्न होता है। इसप्रकार स्वरूप का अनुभवन करते हुए धर्मात्मा परद्रव्य के अंशमात्र को अपनेरूप नहीं देखते, वे निःशंक हैं कि अब परद्रव्य के प्रति भावकरूप से या ज्ञेयरूप से एकता कभी नहीं होगी अर्थात् अब कभी मोह उत्पन्न नहीं होगा। एकत्वबुद्धि को बिल्कुल जड़ से उखाड़ दिया है, मोह का नाश करके अप्रतिहत सम्यग्ज्ञान प्रकाश प्रगट किया है, वे जानते हैं कि—हमें महान ज्ञानप्रकाश प्रगट हुआ है, अब पुनः कभी मोह नहीं होगा।

देखो, यह पंचम काल के क्षयोपशम सम्यक्त्वी अप्रतिहत परिणति का क्षायिक समान अनुभव करते हैं। केवलज्ञान होने से पूर्व मति-श्रुतज्ञान में स्वसंवेदन की ऐसी निःशंकता हो गई है कि मैं ऐसे जिस भाव से चला हूँ, उसी भाव से सीधा क्षायिक लेकर ही रहूँगा; बीच में भंग नहीं पड़ेगा। निरंतर बढ़ती हुई धारा में अप्रतिहतरूप से क्षायिकदशा होना है। ज्ञानी की ऐसी परिणति को अज्ञानी जीव पहिचान नहीं सकते... अरे, मूढ़जीवों को उसका विश्वास भी नहीं आता। निजरस से ही अर्थात् चैतन्य के स्व-संवेदन से ही मोह को निर्मूल करके मुझे महान ज्ञानप्रकाश प्रगट हुआ है, ऐसी धर्मी की अनुभूति है। ऐसी अनुभूति प्रगट करने योग्य है।

प्रश्न—वह तो चाहे जब हो सकता है।

उत्तर—जब चाहे नहीं, किंतु इसी समय मुझे यह करने योग्य है—ऐसी रुचि जिज्ञासु को होती है। चाहे जब हो सकता है, इसलिये अभी नहीं करना—ऐसा यदि कहता हो तो तुझे वास्तव में आत्मा की रुचि ही नहीं है। जिसे सचमुच आत्मा की रुचि हो, वह वर्तमान में ही उसका प्रयत्न करता है। इस समय यह करने योग्य नहीं है और दूसरा कुछ करने योग्य है—ऐसा कहनेवाले को तत्त्व का अनादर है।

अरे जीव! ऐसा स्वभाव सुनकर एक बार तो उल्लसित हो! एक बार कुतूहलपूर्वक अंतर में इस वस्तु को देख तो सही! सर्वज्ञ और संत जिसकी इतनी भारी महिमा गाते हैं, वह वस्तु अंतर में कैसी है? उसे प्रगटरूप से देख। जहाँ धर्मात्मा को ज्ञानप्रकाश प्रगट हुआ, वहाँ वे निःशंकरूप से कहते हैं कि—हमें महान ज्ञानप्रकाश प्रगट हुआ है, अब हमें पुनः मोह नहीं होगा। यह किसी से पूछना नहीं पड़ता, स्वयं को ही निःशंक अपनी खबर पड़ जाती है।

जिन्हें आत्मा का अनुभव हुआ है, वे धर्मात्मा संत दूसरों से प्रमोदपूर्वक कहते हैं कि अहो जीवो! यह चैतन्य आत्मा शांतरस का समुद्र है, शांतरस का समुद्र उल्लसित हो रहा है... इस चैतन्य के शांतरस में तुम निमग्न होओ। विभ्रमरूपी आवरण को हटाकर इस शांतरस के समुद्र को देखो। स्वयं को जो अनुभव हुआ, उस अनुभव की प्रेरणा देते हैं कि—जगत के सर्व जीव ऐसे आत्मा का अनुभव करो। यह भगवान ज्ञानसमुद्र विभ्रम दूर करके सर्वांग प्रगट हुआ है... विभ्रम उसका अंग नहीं था, उसे दूर कर दिया और स्वानुभव में सर्वांग प्रगट हुआ... शुद्धता का स्वसंवेदन होने से सम्पूर्ण भगवान आत्मा प्रसिद्धि में आ गया। अहा, शांतरस में झूलते हुए संत वह मार्ग को बतला रहे हैं कि अरे जीवो! तुम इस मार्ग पर आवो! सपरिवार आमंत्रित करते हैं कि—हमने भ्रम का आवरण हटाकर इस भगवान ज्ञानसमुद्र को प्रगट किया है... इसे जगत के सर्व जीव देखो। जिसप्रकार नाटक में पर्दा हटने से दृश्य प्रगट होता है और सब दर्शक उसमें मग्न हो जाते हैं; उसीप्रकार यहाँ भ्रमरूपी पर्दा हटाकर भिन्न चैतन्यतत्त्व को प्रगट बतलाया है, उसे देखने में सर्व जीव अत्यंत निमग्न होओ... शांतरस से भरपूर चैतन्य समुद्र तुम्हारे अंतर में ही उछल रहा है।

'एष' यह भगवान आत्मा—ऐसा स्वानुभवप्रत्यक्ष करके आचार्यदेव उसकी प्रेरणा करते हैं। जिसप्रकार कोई वस्तु को हाथ में लेकर साक्षात् बतलाता है, उसीप्रकार चैतन्यतत्त्व को स्वानुभव में लेकर आचार्यदेव ने स्पष्ट बतलाया है कि—देखो, यह चैतन्यसमुद्र भगवान आत्मा शांतरस से भरपूर है। दृष्टि के सामने पर्यायबुद्धिरूपी तिनके की ओट में पहाड़ है; वह तिनका दूर करने से शांतरस का पिण्ड चैतन्य पर्वत दृष्टिगोचर होता है।

महान चैतन्य सरोवर में विवेकी-सम्यग्दृष्टि हंस आनंदरूपी मोती चुगते हैं... राग का चारा वे नहीं चरते।

स्वानुभव के उत्कृष्ट रस से-उत्कृष्ट महिमा से संत कहते हैं कि—एकसाथ और सर्वलोक ऐसे शांत चैतन्यरस में निमग्न होकर उसका अनुभव करो। अंतर्मुख स्वभाव के अतिरिक्त बाह्य में अन्य कोई अवलंबन है ही नहीं। इसमें सचमुच अपने स्वानुभव की प्रसिद्धि है। ऐसा स्वानुभव प्रगट करना ही धर्म है।

सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा दूसरों को भी सम्यग्दृष्टि बनाते हैं

देखो, यह आत्मख्याति का खेल! चैतन्य के शांतरस का नृत्य!! सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा चैतन्य के ऐसे नाटक को स्वानुभव से देखते हैं और अन्य सुपात्र मिथ्यादृष्टि जीवों को भी जीव-अजीव की भिन्नता बतलाकर, भेदज्ञान कराके भिन्न चैतन्य का अनुभव कराते हैं। इसप्रकार चैतन्य को देखनेवाले सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा दूसरों को सम्यग्दृष्टि बनाते हैं। वाह, देखो तो कैसी शैली है! सम्यग्दृष्टि दूसरों को भी सम्यग्दृष्टि बनाते हैं। दूसरे जीव भी ऐसे ही हैं कि जो अवश्य यथार्थ समझकर सम्यग्दृष्टि हो जाते हैं। इसलिये ऐसा कहा है कि सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा अन्य देखनेवालों को (अर्थात् जिन्होंने चैतन्य को देखने की सच्ची जिज्ञासा हुई है उन्हें) यथार्थ स्वरूप बतलाकर, भ्रम मिटाकर, शांतरस में लीन करके सम्यग्दृष्टि बनाते हैं।

अरे जीवो! तुम इस चैतन्यतत्त्व को देखो, अंतर में कुतूहल करके लगन लगाकर इस आत्मतत्त्व का अनुभव करो, मरकर भी अर्थात् मरणपर्यंत तक की चाहे जितनी प्रतिकूलता जगत में आये, तथापि उसकी परवाह न करके इस चिदानंदतत्त्व को देखो और उसके निजानंद में लीन होओ। चैतन्य निजानंद में मस्त धर्मात्मा संत जगत की किसी प्रतिकूलता से नहीं डिगते। अन्य सर्व रस छोड़कर वे निजानंद तत्त्व की साधना में ही मस्त है:—

जहगतडाँ कहे छे के भगतडाँ घेलाँ दे,
पण घेलाँ न जाणशो रे....
अे प्रभुने त्याँ पहलाँ छे।
जगतडाँ कहे छे के भगतडाँ कालां छे,
पण कालाँ न जाणशो रे....
अे आतमाने वहालाँ छे।

अहा, धर्मात्मा भक्त बालक की तोतली बोली के समान और मुक्त मन से भक्ति करते हैं वहाँ अज्ञानी कहते हैं कि यह तो पागल हैं, परंतु उनके अंतर में नित्य चैतन्य की चेतना का रंग लगा है, उसकी अज्ञानी को खबर नहीं है। ज्ञानी के अंतरंग भाव को अज्ञानी नहीं पहिचान सकते। चैतन्य रंग में जगत को भूलकर जो आत्मा को साधने निकले, वे धर्मात्मा परमात्मा के मार्ग में प्रथम हैं; जगत के मूढ़जीव भले ही उन्हें पागल कहें किंतु प्रभु के दरबार में वे आगे हैं, अर्थात् वे आत्मा को तथा धर्मात्मा संतों को प्रिय हैं।

श्री दि० जैन विद्यार्थी गृह-सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परीक्षा-पत्र

विषय-धार्मिक-छहढाला प्रवेशिका

प्रश्न-१ (क) सारे जगत में साररूप वस्तु क्या है ? और उस संबंध में गाथा अर्थ सहित लिखें।

(ख) मोह को महामद क्यों कहा ? दृष्टांत सहित लिखो।

(ग) सात व्यसनों के नाम, उनसे भी बड़ा पाप हो तो लिखिये।

(घ) नित्य निगोद किसे कहते हैं, उस दशा में रहने का काल कितना ? उन जीवों को इन्द्रियाँ कितनी ? ज्ञान कितने ? शरीर कितने ? और नरक तथा निगोद के दु:ख का अंतर लिखो, वह दु:ख संयोग के कारण से है या कोई दूसरे कारण से है ?

(ङ) चार गति के नाम और उसमें दु:खों का वर्णन १०-१२ पंक्ति में लिखें, और उन चार गति में से कौन सी गति पसंद करने योग्य अच्छी है ?

प्रश्न-२ (क) त्रस और स्थावर का लक्षण क्या ? उनके सब भेद, इन्द्रियाँ कितनी हैं ? वह उनके नाम सहित लिखो।

(ख) अरिहंत तथा सिद्ध भगवान संज्ञी हैं या असंज्ञी, त्रस हैं या स्थावर।

(ग) अष्ट मूलगुण के नाम दीजिये, वे किसको होते हैं ?

(घ) मिथ्यादर्शन के कितने भेद ? उनके लक्षण सहित वर्णन करो।

प्रश्न-३ (क) आत्महित के कारण ऐसा ज्ञान वैराग्य दु:खदाता मानना, वह किस तत्त्व की भूल है।

(ख) नग्नदिगम्बर भावलिंगी मुनि को दु:खी मानना किस तत्त्व की भूल है।

(ग) संसार, उसका कारण और उनका लक्षण क्या ? यदि उसका स्वरूप स्त्री, देह, पुत्र, मकान धनादि यह बात सत्य हो तो उनका वर्णन लिखिये।

(घ) निश्चयहिंसा और चोरी - लोगों की दृष्टि में हिंसा और चोरी का लक्षण लिखो।

(ङ) आत्मा के खास भावों का नाम, उसमें से सबसे महान और सबसे अन्तिम भाव का वर्णन करो।

(च) जीव के भाव तथा इच्छायें पलटते हैं, उसका मूल कारण क्या है, उसका नाम क्या है।

प्रश्न-४ (क) कौन से द्रव्य का सर्वथा नाश होगा ?

(ख) 'आत्मा ज्ञानं' ?....यह श्लोक और उसका अर्थ—

(ग) जिसको धर्म करना ही हो उसे प्रथम क्या करना ?

(घ) सामनेवाले जीव मरे तो पाप हो-बचे तो पुण्य हो, उसका दृष्टांत सहित वर्णन—

(ङ) पर को मारने का भाव क्या है, जिलाने का भाव क्या है ?

(च) द्रव्यमरण तथा भावमरण किसे कहते हैं ?

प्रश्न-५ (क) अंब अम्बरीष कौन से देश के राजा हैं और वह क्या काम करते हैं ? अरिहंतदेव कौन से राजा का नाम है ?

(ख) व्यवहार सम्यग्दर्शन और निश्चय सम्यग्दर्शन का लक्षण क्या ?

(ग) लोक के भेद, वनस्पति के भेद, पंचेन्द्रिय के भेद, वैमानिक देव के भेद, जीव के भेद लिखो।

(घ) सामान्य-विशेष के भेद।

(ङ) सामान्य गुण कितने द्रव्य में होता है, सामान्य गुण किस द्रव्य में नहीं होता ? कारण बताओ।

प्रश्न-६ (१) कालद्रव्य, और आकाशद्रव्य को आकार होता है ?

(२) सिद्ध भगवान को निरंजन निराकार क्यों कहा ?

नीचे जगह में क्या लिखना ?

(३) पाँच इन्द्रियवाला जीव कहना वह ..... नय है।

(४) ज्ञानवाला जीव कहना वह ..... नय है।

(५) घी का घड़ा कहना वह ..... नय है।

(६) मिट्टी का घड़ा कहना वह ..... नय है।

(७) शुभ भावरूप व्यवहार करते-करते धर्म होता है, ऐसा मानना वह ..... है।

(८) शुभभाव से ..... बन्ध होता है।

(क) द्रव्य के अनेक नाम लिखो।

गुण के अनेक नाम लिखो।

पर्याय के अनेक नाम लिखो।

(ख) दर्शन, सम्यक्त्व, सम्यग्दर्शन, यह द्रव्य है, गुण है या पर्याय है ? गुण हो तो कौन सा, पर्याय हो तो किस गुण की ?

निश्चय और व्यवहारनयों की मर्यादा

विद्वद्रत्न श्री रामजी माणेकचंद्र दोशी, एडवोकेट

(१) श्री समयसार गाथा २ में आचार्यदेव ने स्वसमय-परसमय ऐसी जीव की दो परस्पर विरुद्ध पर्यायों का स्वरूप कहा है, वहाँ मोह राग-द्वेषादि भावों में एकतारूप से लीन होकर जीव प्रवर्तमान है तथा पुद्गल कर्म के कार्मण स्कंधरूप प्रदेशों में स्थित होने से परद्रव्य को अपने साथ एकरूप जानता तथा रागादिरूप परिणमता हुआ वह परसमय है और उनसे विरुद्ध भाव में परिणमता जीव स्वसमय है—ऐसा टीका में कहा है।

(२) यह परसमयपना दूर करने के लिये गाथा ५ में स्व से एकत्व और पर से विभक्तपना दर्शाऊँगा—ऐसा कहा है। प्रथम नय का स्वरूप समझाया है, वहाँ गाथा ६ से १० तक में निश्चय और व्यवहार का वर्णन आया है।

गाथा ११ की टीका में कहा है कि व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ है अर्थात् जितने प्रकार का व्यवहार है, वह सब ही अभूतार्थ होने से अभूतार्थ अर्थ को प्रगट करता है, शुद्धनय एक की भूतार्थ होने से भूत अर्थ को प्राप्त करता है।

(३) इस गाथा में जीव को सम्यग्दर्शन किस प्रयोग द्वारा हो सकता है, यह दिखाया है।

(४) व्यवहारनय अभूतार्थ है, उसका अर्थ यह कि व्यवहार है सही, उसके अनेक भेद और अनेक विषय भी हैं किंतु उनमें से एक भी व्यवहार शुद्धता प्रगट करने के लिये आश्रय करने योग्य नहीं है।

(५) इसलिये उसे अभूतार्थ कहा है, इससे सिद्ध होता है कि आचार्यदेव अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को सम्यक् श्रद्धान कराना चाहते हैं और जहाँ पर सम्यक्श्रद्धान कराना हो, वहाँ पर जितने प्रकार के व्यवहार हो, उसका झुकाव-आश्रय छोड़ने योग्य है, ऐसा दिखाना चाहिये। यदि ऐसा न दिखाया जाये तो शिष्य व्यवहार का आश्रय नहीं छोड़ेगा और उसे सम्यग्दर्शन कभी नहीं होगा, जब कि सम्यग्दर्शन धर्म का मूल तो प्रसिद्ध है ही।

(६) अब जितने प्रकार का व्यवहार है, उन सभी का आश्रय छुड़ाना हो तो शुद्ध पर्याय अशुद्ध पर्याय, कर्म, देह और पर के साथ का संबंध अर्थात् सर्व प्रकार के व्यवहार दर्शाना ही चाहिये। अतः अध्यात्मशास्त्र कथित और आगम कथित सर्व व्यवहार का वर्णन करना चाहिये।

(७) यह बात ध्यान में रखकर श्री समयसार शास्त्र में सर्व प्रकार के व्यवहार का (आगम शास्त्रों में जो निश्चयनय और उसके अवांतर भेद कहे हैं, उन सभी का) समाविष्ट कर दिया है—अलग-अलग नाम नहीं देकर सभी को 'व्यवहार' शब्द में समाविष्ट कर दिया है। टीका में भी श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ने यही पद्धति रखी है। श्री जयसेनाचार्य ने अपनी टीका में नयों के अनेक प्रकार अवांतर भेद दिये हैं।

(८) समयसार गाथा १२ में पर्याय में जो विकार रहता है, वह बतलाया है किंतु गाथा ११ के अनुसार वह कोई भी व्यवहार-शुद्धता प्रगट करने के लिये आश्रय करने योग्य नहीं है, यह कहा है।

(९) समयसार में ४१५ गाथा में कहा है, वही संक्षेप में प्रथम की १२ गाथा तक में सब आ

गया है—ऐसा श्री जयसेनाचार्य ने गाथा १२ की टीका में कहा अर्थात् संक्षेप रुचि शिष्य इतना उपदेश सुनकर मिथ्यादर्शन छोड़कर सम्यग्दृष्टि हो सकता है और विस्ताररुचि शिष्यों के लिये ४१५ गाथा कही हैं, जो उसे सुनकर सम्यग्दृष्टि हो सकता है।

(१०) (आगम में जो निश्चयनय और उसके भेद कहे हैं, उन सभी को अध्यात्मशास्त्र में व्यवहार में समाविष्ट कर लिया है) समयसार गाथा १३ से विस्तार शुरु होता है। कर्म (भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म) जीव का स्वरूप नहीं है, परंतु अप्रतिबुद्ध जीव ऐसा मानता है, उस मान्यता को छुड़ाने के लिये गाथा १९ से २५ कही है। गाथा २० में सचित्त, अचित्त, मिश्र पर्याय सब ही परद्रव्य हैं, ऐसा समझाया है। (मिश्र में रागादि से लेकर मार्गणास्थान, गुणस्थान, जीवस्थान सब आ जाते हैं कि जो जीव की विकारी पर्याय है, उन सभी का आश्रय छुड़ाने के लिये आचार्य ने उन सभी को परद्रव्य कहा है, इस आशय की गाथा मोक्षपाहुड़ में १७वीं है।) गाथा २२ में भूतार्थ का आश्रय करनेवाला ही ज्ञानी कहा है।

(११) तीर्थंकर भगवान के शरीर की स्तुतियाँ की जाती हैं, उसका अर्थ अज्ञानी की समझ में नहीं आने से वह शब्दों के आधार से जीव और शरीर में एकता मान लेता है। इसलिये आचार्य ने गाथा २७ में व्यवहार मात्र से आत्मा और शरीर का एकपना है किंतु निश्चय से एकपना नहीं है, ऐसा कहा है। यहाँ पर के साथ का व्यवहार बतलाकर उसका आश्रय छुड़ाया है।

(१२) गाथा २७-२८ में श्री अमृतचंद्राचार्य ने 'व्यवहार' के साथ 'मात्र' शब्द लगाकर व्यवहार जानने योग्य है किंतु आश्रय करने योग्य नहीं है, यह दृढ़ किया है।

(१३) गाथा ४६ में व्यवहारनय का विषय सिद्ध किया है और जीव को परद्रव्य के आश्रय द्वारा जो शुभाशुभभाव होता है, वह अपरमार्थभूत है अर्थात् उसका ज्ञान करना चाहिये किंतु वह आश्रय करने योग्य नहीं है, यह बात विशेष स्पष्ट की है।

(१४) गाथा ४७-४८ में दृष्टान्त द्वारा यह बात सिद्ध की है कि—एक जीव का समग्र राग ग्राम में व्यापना अशक्य होने से व्यवहारी लोगों का अध्यवसानादि अन्य भावों में जीव कहने रूप व्यवहार है, परमार्थ से तो जीव एक ही है। (यह व्यवहार भी आश्रय छोड़ने के लिये ही कहा है।)

(१५) गाथा ५१ से ५५ में २९ बोल कहे हैं, उसमें कई तो पुद्गल की पर्यायें हैं और कई जीव की अशुद्ध पर्यायें हैं (गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवस्थान आदि सर्व ही एक साथ लेकर) उनका वर्णन करके वह सभी को पुद्गल का परिणाम कहा है। जिससे गाथा ६२ से ६८ में जो भी

व्यवहारनय का विषय दर्शाया, उस सभी का आश्रय छुड़ाया है (जीव के उपयुक्त परिणामों को पुद्गल क्यों कहा उसका कारण आगे कहेंगे।)

(१६) गाथा ५६ में इन सभी को जीव का (गोम्मटसार आदि में भी) कहा है, वह मात्र व्यवहार से है, निश्चयनय से नहीं है, ऐसा समझना चाहिये।

(१७) जीवाजीव अधिकार की ३८ वीं गाथा तक 'रागादि से जीव भिन्न है' ऐसा विधि (अस्ति) की मुख्यता से कथन है और गाथा ३९ से ३८ तक रागादि जीव-स्वरूप नहीं है, ऐसे निषेध (नास्ति) की मुख्यता से कथन है। (देखो, गाथा ६८ नीचे श्री जयसेनाचार्य टीका)। इसप्रकार विधि-निषेध (अस्ति-नास्ति) द्वारा आचार्यदेव ने 'अनेकांत' स्वरूप समझाया है, उसके प्रथम दो भंग यहाँ कहे हैं (शेष पाँच भंग उसी पर से समझ लेना चाहिये।)

(१८) कर्ता कर्म अधिकार गाथा ८३ में निश्चयनय से आत्मा अपने को ही करता है और अपने को ही माँगता है, ऐसा कहा है। यह निश्चयनय 'पर्याय' को बतलाता है। जबकि गाथा ११ में कथित निश्चयनय द्रव्य के ध्रुव स्वरूप को प्रदर्शित करता है।

(१९) बाद में गाथा ८४ में कहा है कि व्यवहारनय का मत ऐसा है कि आत्मा अनेक प्रकार के पुद्गल कर्म को करता है और उसे ही भोगता है।

(२०) इस गाथा पर दोनों आचार्य की टीका पढ़ने योग्य है। उसमें तो स्पष्ट किया है कि अज्ञानियों का अनादि संसार से यह प्रसिद्ध व्यवहार है।

(२१) अज्ञानियों का ही यह प्रसिद्ध व्यवहार है, ऐसा सिद्ध करने के लिये गाथा ८५ की सूचनिका में कहा है कि 'अब इस व्यवहार में दूषण देते हैं' उसका अर्थ यह हुआ कि गाथा ८४ में कहा हुआ व्यवहार दूषणमय है अर्थात् वह अज्ञानियों को ही प्रयोजनभूत हे और ऐसा ही अर्थ (गाथा ८५ को ध्यान में रखकर) दोनों आचार्यों ने किया है। और इस गाथा का आशय का अनुसरण करके पंचाध्यायीकार ने गाथा ५७१ से ५७९ में जीव को परद्रव्य का कर्ता भोक्ता मानना, वह नयाभास कहा है। यह 'नयाभास' श्री समयसार में से ही पंचाध्यायीकार ने निकाला है।

(२२) गाथा ९८ में कहा है कि आत्मा घट पट रथादि वस्तुओं को, इन्द्रियों को, द्रव्यकर्म तथा शरीरादि नोकर्मों को करता है, ऐसी व्यवहारी लोगों की मान्यता है। उसकी टीका में दोनों आचार्य ने कहा है कि ऐसा 'व्यवहारी जीवों का व्यामोह है' और भावार्थ में पण्डित जयचंद्रजी ने कहा है कि 'घट पट, कर्म, नोकर्म इत्यादि परद्रव्यों का आत्मा कर्ता है, ऐसा मानना व्यवहारी लोगों

का व्यवहार है, अज्ञान है; इसप्रकार यह व्यवहार वास्तव में नयाभास है। पंचाध्यायीकार ने जो नयाभास दिखाया है, वह इस गाथा के अभिप्राय का ही अनुसरण है।

(२३) गाथा ९७ में आचार्यदेव 'सकल कर्तृत्व' छुड़ाते हैं। इस गाथा में कहे हुए सिद्धांत को सर्व विशुद्धिज्ञान अधिकार में प्रारम्भ की शुरु की गाथा ३०८ से ३११ में कहा है। वह भी 'सकल कर्तृत्व' को छुड़ाने के लिये है। 'अथात्मनोऽकर्तृत्वंदृष्टांतं पुरस्सरमाख्याति' इन शब्दों में गाथा की सूचनिका है।

अनादि का 'कर्तृत्व' जीव अज्ञान से मान रहे हैं, उसे छुड़ाने के लिये ये गाथायें कर्ताकर्म अधिकार की पुष्टि के लिये कही है, 'अकर्तृत्व' विशेष सिद्ध करने के लिये 'क्रमनियमित' शब्द दो बार आचार्य ने प्रयुक्त किया है।

(२४) गाथा ९९-१०० बहुत उपयोगी है। गाथा ९९ में जीव पर का उपादानकर्ता नहीं है ऐसा बताया है और गाथा १०० में उससे आगे बढ़कर जीव पर का निमित्त कर्ता भी नहीं है, ऐसा न्याय से सिद्ध किया है।

जीव नित्य होने से जीव को निमित्तरूप से नित्य कर्तृत्व आ जाये, और ऐसा होने से कभी उसका मिथ्यात्व दूर नहीं हो सकेगा। जिसे अज्ञानी रहना हो, वह निमित्तकर्ता अपने को भले ही माने, ऐसा ही गाथा १०० का आशय है।

एक कुम्भकार गुरु से प्रश्न करता है।

प्रश्न—भगवान! मैं घट का उपादानकर्ता तो नहीं हूँ किंतु निमित्तकर्ता तो हूँ, यह बात तो सही है?

समाधान—नहीं। कारण कि तू तो जीव है तुझे अज्ञानी रहना हो तो अपने को निमित्तकर्ता मान ले। ज्ञानी सम्यग्दृष्टि कुम्भकार तो घट का निमित्तकर्ता भी नहीं है, वह तो घट के करने के विकल्प का तथा हस्त के व्यापार का ज्ञाता है। विकल्प तथा हस्त का व्यापार ज्ञेयरूप से ज्ञान में निमित्त है, अतः ज्ञानी कुम्भकार तो घट की उत्पत्ति का निमित्तकर्ता नहीं है। (देखो, गाथा ७५-१०१ टीका)

(२५) इसप्रकार पंचाध्यायीकार ने जीव को पर के साथ निमित्त-नैमित्तिक के संबंध में कहा है कि तुझे अज्ञानी रहना हो तो निमित्तकर्ता मानना—ऐसा जो गाथा ५७१ में कहा है, वह इस गाथा का अनुसरण है।

(२६) गाथा १०५ में कहा है कि 'इस लोक में वास्तव में आत्मा स्वभाव से पौद्गलिक कर्मों का निमित्तभूत न होने पर भी, अनादि अज्ञान के कारण पौद्गलिक कर्म को निमित्तरूप होते हुए अज्ञानभाव में परिणमता होने से, निमित्तभूत होने पर पौद्गलिक कर्म उत्पन्न होता है, इसलिये 'पौद्गलिक कर्म आत्मा ने किया' ऐसा निर्विकल्प विज्ञानघन स्वभाव से भ्रष्ट, विकल्प परायण अज्ञानियों का विकल्प है, वह विकल्प उपचार ही है, परमार्थ नहीं।' (देखो, पाटनी ग्रंथमाला, समयसार, पृष्ठ १८२-१८३)

(२७) इसलिये यह भी नयाभास का स्वरूप है। पंचाध्यायीकार ने समयसार की गाथाओं का सार खींचकर 'नयाभास' समझाया है।

बंध अधिकार

(२८) समयसार की २७२ वीं गाथा में व्यवहारनय निश्चयनय द्वारा प्रतिषेध्य है, ऐसा कहकर निश्चयनय के आश्रय से मुनिवर निर्वाण को प्राप्त करते हैं, ऐसा स्पष्ट कहा है, अर्थात् यहाँ भी व्यवहारनय अभूतार्थ है—आश्रय करने योग्य नहीं है, ऐसा जो कथन समयसार, गाथा ११ में है वह यहाँ भी है और इस अभिप्राय का कलश नं० १७३ है जो गाथा २७२ की सूचनिकारूप में दिया है [गाथा २७२ में निर्विकल्प निश्चयनय कहा है। पंचाध्यायी में सब नय को सविकल्पनय कहा है।]

(२९) गाथा २७६-२७७ में किस प्रकार व्यवहारनय निश्चयनय द्वारा प्रतिषेध्य है, वह (इन दो गाथाओं में) समझाया है—यह गाथायें भी भूतार्थ का अनुसरण-आश्रय करने के लिये और व्यवहार को अभूतार्थ कहकर उसका आश्रय छुड़ाने के लिये कहा है।

(योगेन्द्र आचार्यकृत योगसार में दोहा गाथा ३७ में सर्व ही व्यवहार छोड़ने योग्य है, ऐसा स्पष्ट कहा है।)

(३०) गाथा ३५६ से ३६३ में निश्चय-व्यवहार का स्वरूप है। उसमें छह स्थान पर टीका में कहा है कि 'यहाँ स्वस्वामीरूप अंश का व्यवहार से क्या साध्य है? कुछ भी साध्य नहीं है' इसलिये ये गाथाएँ भी व्यवहार के आश्रय से राग और कलुषता उत्पन्न होती है। इसप्रकार समयसार की गाथा ११ वीं में व्यवहारनय को अभूतार्थ कहा है, उसी के अनुरूप कथन है।

प्रमाण ज्ञान

(३१) इसप्रकार निश्चयनय और व्यवहार का स्वरूप दोनों को एक ही साथ जानना प्रमाण

ज्ञान है। क्योंकि प्रमाण ज्ञान हमेशा हेय-उपादेय के ज्ञान सहित होता है।

(३२) उसे प्रमाण कहो या अनेकांत कहो, दोनों एक ही है क्योंकि अनेकांत प्रमाण ज्ञान का विषय है। अध्यात्म में नय और नय के विषय को भी अभेद माना जाता है। इसप्रकार प्रमाण और प्रमाण के विषय को भी अभेद माना जाता है। उसका दृष्टांत—(१) निश्चयनय के आश्रय से मोक्ष होता है, ऐसा कहा है, वहाँ निश्चयनय के विषय का (त्रैकालिक ज्ञायकस्वभाव जो अभेदरूप है उसका) आश्रय समझना। (२) घटज्ञान पटज्ञान यह प्रमाण को बतलानेवाला दृष्टांत है। यहाँ घट और पटादिक तो वास्तव में ज्ञान का विषय है परंतु विषय को अभेद मानकर घटज्ञान पटज्ञान आदि कहने में आता है। (यह व्यवहार का दृष्टांत है।)

[स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में गाथा २६५ में वस्तु के कोई एक धर्म को भी नय कहा है। वह तो नय का विषय है तो भी नय और नय के विषय को अभेद मानकर उसे नय कहा जाता है।]

—क्रमशः

क्या व्यवहार रत्नत्रय सच्चा मोक्षमार्ग है ?

श्री पंडित गेंदालालजी शास्त्री, बूँदी

जब निश्चय के बिना पहले गुणस्थान से एक पैर भी आगे नहीं धर सकता, तब उस निश्चय शून्य केवल व्यवहार से दसवें गुणस्थान में चला जावे बड़ी ही अजब ढंग की बात है। वास्तव में निश्चय बिना यह सारा व्यवहार बिना चावलों के भूसे कूटने के समान ही आचार्यों ने बतलाया है। समयसार में एक गाथा उद्धृत है कि 'व्यवहार बिना तीर्थ की प्रवृत्ति नहीं होती, लेकिन निश्चय के बिना तो वास्तविक तत्त्व ही लुप्त हो जाता है।' जब निश्चय के बिना वास्तविक तत्त्व ही गायब हो जाये तो उस झूठे तीर्थ प्रवृत्तिरूप व्यवहार से क्या लाभ है ? जब दसवें गुणस्थान तक केवल व्यवहार बतलाते हैं, तो बिना तत्त्व का वह व्यवहार कैसे मोक्षमार्ग हो सकता है ?

कुछ बन्धुओं का अजब ही तर्क है—

'प्रथम बम्बई जाने का निश्चय किया जाता है, बाद में टिकिट लेकर गाड़ी से जाने का व्यवहार होता है। इस सीधी सादी बात का अप्रासंगिक 'संरम्भ समारम्भ आरम्भ' का प्रकरण छेड़कर खंडन करने बैठ गये। इसमें न तो निश्चय की बात है और न व्यवहार की, फिर भी अपना आलाप चालू ही रखते हैं।

यह तो सब कोई जानते हैं कि संसार भ्रमण से थक गये हैं, वे सिद्ध परमात्मा के समान अपने ज्ञायकस्वभाव को जानकर उसका ही श्रद्धा में प्रथम आश्रय ग्रहण करते हैं, इसी का नाम निश्चय सम्यग्दर्शन है। पश्चात् ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से जितने अंश में स्थिर होकर रागादि का अभाव करते हैं, उसका नाम वास्तव में चारित्र है। कोई निश्चय अपने ध्रुवज्ञायक को तो श्रद्धा में न ले और रागरूप व्यवहार में ही लगा रहे तो उसके मोक्षमार्ग का प्रारम्भ रंचमात्र भी नहीं हुआ है। इससे सिद्ध हुआ कि जैसे बम्बई जाने का पहले निश्चय किया जाता है, पश्चात् तद्नुकूल आचरण होता है, वैसे ही पहले शुद्ध आत्मतत्त्व का पहले निश्चय श्रद्धा-ज्ञान किया जाता है, बाद में उसका सहचर व्यवहार रत्नत्रय का भी यथापदवी धारण करने का राग आता ही है। भूतनैगमनय से पूर्व के व्यवहार को निश्चय का साधन कहते हैं, लेकिन उस व्यवहार से निश्चय की प्राप्ति हो ही जावे, ऐसा कोई नियम नहीं है। द्रव्यलिंगी के व्यवहार से निश्चय की प्राप्ति नहीं होती, अतः व्यवहार निश्चय का निश्चित साधन नहीं है। हमारे आचार्यों का यही अभिप्राय है कि भूतार्थ त्रिकाली ध्रुव ज्ञायकस्वभाव को इस जीव ने एक बार भी प्राप्त नहीं किया है। इन बन्धुओं का तथाकथित व्यवहार रत्नत्रय तो अनन्त बार धारण कर लिया, लेकिन साध्यरूप मोक्ष की सिद्धि नहीं हुई। खास करके जैनधर्म में अन्य मतों से यही महान अंतर है कि जैनधर्म वीतराग विज्ञानमय आत्मतत्त्व की प्राप्ति से ही मोक्ष होना कहता है, जबकि अन्य मत राग द्वारा परमात्मा पद प्राप्ति की प्ररूपणा करते हैं।

वीतरागी निश्चयमोक्षमार्ग तो आत्मा की निज शुद्ध पर्याय ही है, जबकि व्यवहार रत्नत्रय नियमतः राग का सहचारी है।

जरा विचारने की बात है कि—निश्चय सम्यग्दर्शन आत्मा के दर्शन (श्रद्धागुण) की निर्मल पर्याय है जो अपने गुण के साथ अभेद होकर द्रव्य में मिल जाती है। इसीप्रकार निश्चय ज्ञान आत्मा के त्रिकाली ज्ञानगुण की निर्मल पर्याय है तथा निश्चय सम्यक्चारित्र भी चारित्रगुण की निर्मल पर्याय है, जो अपने उद्भव स्थान में तन्मय होकर अभेदरूप से परिणत हो जाती हैं।

लेकिन भेदरूप तत्त्वार्थश्रद्धानरूप तथा सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के रागरूप व्यवहार

सम्यग्दर्शन, अंग पूर्व के ज्ञानस्वरूप व्यवहार सम्यग्ज्ञान और व्रत, समिति के पालनरूप व्यवहार सम्यक्चारित्र ये तीनों अपने स्व-स्वगुणों की पर्यायें न होकर मात्र एक चारित्रगुण की रागरूप पर्यायें ही हैं। अतः ये शुद्ध आत्मा के त्रिकाली स्वभाव में अभेदरूप होकर सम्मिलित नहीं हो सकती है। ये व्यवहार रत्नत्रय पर्यायें मात्र कुछ भूमिकाओं में रहकर छूट जाती हैं।

वास्तव में सात तत्त्वों के भेदरूप व्यवहार सम्यग्दर्शन को भावभासन बिना सच्चा सम्यग्दर्शन माना ही नहीं है। क्या ऐसे व्यवहारदर्शन, ज्ञान चारित्र अनंत बार अभव्यों ने धारण करके नव में ग्रैवेयक तक की प्राप्ति नहीं की? यदि की है तो फिर यह सच्चा मोक्षमार्ग कहाँ रहा? जो मनुष्य दसवें गुणस्थान तक निश्चय बिना केवल व्यवहार रत्नत्रय ही होना मानते हैं, उनकी बुद्धि की बलिहारी है। बारम्बार आचार्यदेव तो पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि बिना निश्चयरूप स्वात्मोपलब्धि के मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी का उदयाभाव इस जीव के हो ही नहीं सकता। इसीलिए पहले गुणस्थान से एक पैर भी आगे यह नहीं खिसका है। यह निश्चित है कि चतुर्थ गुणस्थान से संवर-निर्जरारूप निश्चय धर्म का प्रारम्भ होता है। क्या केवल व्यवहार धर्म से जीव के संवर और गुणश्रेणी निर्जरारूप धर्म हो सकता है? यदि हो सकता तो सावधानतापूर्वक व्यवहार रत्नत्रय का पालन करते हुए अभव्य द्रव्यलिंगी के क्यों रंचमात्र संवर-निर्जरारूप धर्म नहीं हुआ? व्यवहार की निरर्थकता बतलाते हुए श्री कुन्दकुन्दस्वामी समयसार में लिखते हैं।

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आस्रव संवर णिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं॥१३॥

इस टीका में श्री अमृतचंद्र सूरि लिखते हैं—

'अमूनि हि जीवादीनि नव तत्त्वानि भूतार्थेनाभि गतानि सम्यग्दर्शनं सम्पद्यं त एव।' अर्थात् ये जीवादि नवतत्त्व भूतार्थ (निश्चय) नय से जाने हुए सम्यग्दर्शन ही है। इससे सिद्ध होता है कि केवल व्यवहार से जाने हुए जीवादि तत्त्व सच्चे सम्यग्दर्शनरूप नहीं हैं। क्या दसवें गुणस्थान तक उक्त तेरहवीं गाथा कथित निश्चय से जीवादि तत्त्वों का ज्ञान नहीं होता? और बिना शुद्ध एकत्वविभक्त आत्मा के निश्चय ज्ञान के केवल द्रव्यलिंगी के समान व्यवहार रत्नत्रय से उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी आरोहण कर सकते हैं?

जिन्हें तत्त्वों का भूतार्थ ज्ञान नहीं, उन्हें दसवें गुणस्थान तक पहुँचा देना आगम के विरुद्ध गजब का ही साहस है। हमारे एक विद्वान लिखते हैं कि पर्याय शुद्धाशुद्ध दो रूप नहीं होती। उनसे

पूछा जाये यदि पर्याय में शुद्ध-अशुद्धरूप दो अंश एक साथ नहीं होते तो फिर एक ही पर्याय में अशुद्धरूप शुभाशुभ भावों से आश्रव-बंध और शुद्ध परिणति द्वारा संवर-निर्जरा ये दोनों धारायें एक साथ कैसे होती हैं ? जिस बंधरूप शुभभाव से संवर-निर्जरा भी हो जावे तो फिर आत्मशुद्धि की आवश्यकता भी क्या रहेगी ? यदि छठे गुणस्थान में एक ही परिणति से बंध और संवर-निर्जरारूप विरुद्ध कार्यों की उत्पत्ति हो तो फिर वह एक अखंड परिणति कहाँ रही ? उसके किसी अंश से बंध हो रहा है और किसी से संवर निर्जरा, फिर भी उसे अखंड पर्याय का प्रमाण पत्र दिया जा रहा है। समयसार में श्री अमृतचंद्र आचार्य लिखते हैं कि 'स्वाश्रितो निश्चयः, पराश्रितो व्यवहार' अर्थात् स्वाश्रित निश्चय है और पराश्रित व्यवहार है। उन्होंने यह नहीं लिखा कि चौथे गुणस्थान से दसवें तक अथवा बारहवें तक केवल पराश्रितरूप व्यवहार ही होता है, स्वाश्रित निश्चय नहीं होता। जबकि श्रद्धागुण की स्वाश्रित पर्याय निश्चय सम्यग्दर्शन है तो उसे जबरदस्ती पराश्रित व्यवहार सम्यग्दर्शन मान लेना कोरी विडंबना नहीं तो क्या है ?

शास्त्रों में द्रव्य के साथ अभेद होनेवाली शुद्ध पर्याय को निश्चय कहा है और शुभ (पुण्य) रूप पर्याय को व्यवहार कहा है। देखो, पंचास्तिकाय १७२ वीं गाथा की श्री अमृतचंद्र सूरि कृत टीका। यदि व्यवहार रत्नत्रय से भी संवर निर्जरारूप आत्मशुद्धि हो जाती तो श्री कुन्दकुन्द भगवान सारीखे उद्भट आचर्य 'ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्णओ।' ऐसा कहकर और श्री अमृतचंद्रस्वामी—'अथ च ब्राह्मणो न म्लेच्छितव्य इति वचनात् व्यवहार नयो नानुसर्तव्यः।' इस तरह व्यवहारनय की हेयता नहीं बतलाते। जो व्यवहार संवर-निर्जरा करके बारहवें गुणस्थान की वीतरागता प्राप्त करा दे, उसे आचार्य हेय कैसे कह देते ? पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय में लिखा है 'भूतार्थबोध विमुख प्रायः सर्वोऽपि संसारः।' अर्थात् संसारी जीव प्रायः भूतार्थ (निश्चय) के ज्ञान से रहित हो रहे हैं, इसीलिये भ्रमण कर रहे हैं। जो भूतार्थ को जानते हैं, वे संसार में चिर भ्रमण नहीं करते हैं।

समयसार में लिखा है कि 'णिच्छय णयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं।' अर्थात् निश्चय नयाश्रित मुनि ही निर्वाण प्राप्त करते हैं। केवल व्यवहाराश्रित तो अनंत संसारी ही हैं। एक महानुभाव यहाँ तक लिखते हैं कि औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक ये तीनों सम्यग्दर्शन व्यवहार सराग सम्यग्दर्शन हैं; निश्चय वीतराग सम्यग्दर्शन तो तेरहवें गुणस्थान में होता है, सो जरा विचारने की बात है कि तत्त्वार्थ राजवार्तिक में श्री अकलंकदेव ने और अमितगति श्रावकाचार में श्री अमितगति आचार्य ने सात प्रकृतियों के सर्वथा क्षय से होनेवाले क्षायिक सम्यग्दर्शन को वीतराग

सम्यग्दर्शन घोषित किया है या नहीं ? जब वीतराग समयग्दर्शन भी व्यवहार कहलायेगा तो फिर निश्चय सम्यग्दर्शन क्या सराग कहलायेगा ? यदि जैसे क्षायिक सम्यग्दर्शन व्यवहार है तो वैसे ही क्षायिक ज्ञान .... केवलज्ञान भी व्यवहार ज्ञान ही हो जायेगा, फिर निश्चय सम्यग्ज्ञान कहाँ बीसवें गुणस्थान में होगा। जैसे ज्ञान का आवरण करनेवाले कर्म के सर्वथा नाश से ज्ञान पर्याय पूर्ण विकसित हो जाती है, वैसे दर्शनमोहनीय और अनंतानुबंधी के सर्वथा अभाव होने पर भी फिर सम्यग्दर्शन पर्याय के विकसित होने में क्या विरोध है ? सो समझ में नहीं आता। पंडित टोडरमलजी सा० मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखते हैं कि—'जैसी तत्त्व प्रतीति श्रुतज्ञान अनुसार छद्मस्थों को होती है, वैसी ही केकवलज्ञानानुसार अरहंत सिद्धों को भी होती है, विरुद्ध नहीं होती।'

एक बन्धु लिखते हैं कि बारहवें गुणस्थान तक 'निश्चय होता नहीं है, तेरहवें गुणस्थान में ही निश्चय रत्नत्रय होता है।' सो एक तरफ तो ये भाई लिखते हैं कि 'व्यवहार माने राग' तो वह राग तो बारहवें गुणस्थान में रंच-मात्र नहीं होता, फिर वहाँ व्यवहार रत्नत्रय, जिसे राग कहा गया है, वह कैसे होता है ? अथवा वहाँ निश्चय व्यवहार दोनों नहीं होते। क्या किया जाये, जिन्होंने मन कल्पित बातों को ही आगम मान लिया, फिर वे जितना लिख दें थोड़ा है। इसके लिये कोई आगम प्रमाण है ? कि निश्चय सम्यग्दर्शन तेरहवें गुणस्थान में ही होता है, नीचे नहीं होता। निश्चय सम्यग्दर्शन की परिभाषा देखिये कि वह कहाँ से हो सकता है ? श्री अमृतचंद्रस्वामी छठे कलश में लिखते हैं—

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः,
पूर्णज्ञान घनस्य दर्शनमिह द्रव्यांतरेभ्य पृथक्।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयं,
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥६॥

अर्थ—यह आत्मा अपने गुण पर्यायों में रहनेवाला है, और शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है, तथा पूर्ण ज्ञानघन है, एवं जितना सम्यग्दर्शन है, उतना ही आत्मा है, ऐसे आत्मा को अन्य द्रव्यों से पृथक् देखना (श्रद्धान करना) ही नियम से सम्यग्दर्शन है। अतः नवतत्त्व की परिपाटी को छोड़कर यह एक ही आत्मा हमें प्राप्त हो। —क्रमशः

राजकोट के दिगम्बर जैन समाज की जनरल सभा में पारित

प्रस्ताव

सौराष्ट्र प्रांत के पाट नगर राजकोट की समस्त दिगम्बर जैन समाज की यह जनरल सभा यह प्रस्ताव पारित करती है कि बिहार सरकार तथा श्वेताम्बर जैन समाज के मध्य जो शाश्वत तीर्थधाम श्री सम्मेदशिखरजी (पार्श्वनाथ हिल) के बारे में इकरारनामा हुआ है, वह एक पक्षीय तथा अन्याय पूर्ण है।

बिहार सरकार ने दिगम्बर जैन समाज के प्रतिनिधिमंडल को यह विश्वास और आश्वासन दिया था कि पार्श्वनाथ पर्वत के बारे में जो भी समझोता जैनों के साथ किया जायेगा, उसमें दिगम्बर जैन समाज के हकों का ख्याल रखा जायेगा तथा समान प्रतिनिधित्व दिया जायेगा। लेकिन उसके विपरीत उस इकरारनामे में दिगम्बर जैन समाज के अधिकारों व स्थापित हकों का कोई भी उल्लेख नहीं किया गया है और न दिगम्बर जैन समाज को पक्षकार ही बनाया गया है, जैसे कि दिगम्बर जैन समाज का इस पर्वत से तथा उसकी पवित्रता से कोई संबंध ही न हो। यहाँ तक कि दिगम्बर जैन समाज का इकरारनामे में कहीं भी नामोल्लेख तक नहीं है, बल्कि श्वेताम्बर समाज के जो हक नहीं थे, उन्हें मान्य किया गया है। यह बहुत ही सोचनीय व दु:ख की बात है।

श्वेताम्बर समाज ने जो आन्दोलन किया था, वह सब समस्त जैनों के नाम से ही किया था परंतु इकरारनामा करते समय सिर्फ अपने ही नाम का उल्लेख कराया है और अपने मतलब की ही सब बातें लिखा ली हैं। यह श्वेताम्बर समाज का दिगम्बर जैन समाज के प्रति अन्याय है। उनका यह कार्य जैन समाज की एकता का घातक है। लोकशाही सरकार के जमाने में भी विहार सरकार ने यह अन्याय काँग्रेस के कतिपय वरिष्ठ महानुभावों के दबाव में आकर किया है, यह बात जाहिर है।

अत: यह सभा दिगम्बर जैन समाज के साथ जो अन्याय हुआ है। उस पर खेद प्रगट करती हुई बिहार सरकार तथा श्वेताम्बर समाज से आग्रह पूर्वक निवेदन करती है कि उक्त इकरारनामा में शीघ्र ही उचित सुधार कर दें, जिससे दिगम्बर जैन समाज के प्रति अन्याय व असन्तोष दूर हो। साथ ही आज की यह सभा भारतीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी से अनुरोध करती है कि यदि बिहार सरकार तथा श्वेताम्बर समाज यह अन्याय दूर न करे तो अपने न्यायपूर्ण अधिकारों के लिये वह ठोस प्रयत्न व उचित कानूनी कार्यवाही करे।

साथ ही साथ आज की यह सभा समस्त भारत की दिगम्बर जैन संस्थाओं एवं समाज से अपील करती है यह समाज के जीवन मरण का प्रश्न है। अतएव इस एक पक्षीय इकरारनामे का देशव्यापी विरोध करे।

रामजी माणेकचन्द दोशी
प्रमुख श्री दि० जैन संघ, राजकोट

तारीख २२-४-६५

कॉपियाँ भेजी गई:—
(१) राष्ट्रपति महोदय देहली
(२) प्रधानमंत्री महोदय देहली
(३) गृहमंत्री महोदय देहली
(४) रेलवे मंत्री महोदय देहली
(५) अध्यक्ष आल इंडिया काँग्रेस कमेटी
(६) राज्यपाल महोदय बिहार सरकार
(७) मुख्यमंत्री महोदय बिहार सरकार
(८) रेवेन्यू मिनिस्टर महोदय बिहार सरकार

यात्रा संघ का अभूतपूर्व स्वागत

श्री बाबूभाई दिगम्बर जैन सम्मेदशिखर यात्रा संघ का जयपुर में तीन दिन का प्रोग्राम रहा। तारीख २१ अप्रेल को सायंकाल जयपुर में आगमन हुआ। सोनगढ़ के प्रसिद्ध आध्यात्मिक संत श्री कानजी स्वामी के प्रमुख शिष्य श्री बाबूभाई चुन्नीलाल (फतेहपुर) यात्रा संघ के संघपति तथा ६०० यात्रियों का विशाल स्वागत जुलूस मानक चौक चौपड़ से जौहरी बाजार, बापू बाजार होकर रामलीला मैदान में ले जाया गया। यात्रा संघ का अभूतपूर्व स्वागत सत्कार किया गया।

दूसरे दिन प्रात: ७.०० बजे एक विशाल रथयात्रा जुलूस चाकसू के चौक से रवाना हुआ।

जिसमें रथ, बैंड, हाथी, घोड़े, बाजा, भजन मंडलियाँ, विभिन्न स्कूलों के बालक-बालिकायें, ६०० यात्रीगण तथा हजारों नर-नारी सम्मिलित थे। जुलूस बहुत शानदार तथा लम्बा था—जौहरी बाजार, त्रिपोलिया बाजार, चौड़ा रास्ता, लालजी सांड का रास्ता जहाँ से जुलूस गुजरा दोनों ओर के बरामदे औरतों व बच्चों से भरे हुए थे। यह विशाल रथयात्रा जुलूस एक दर्शनीय था। जुलूस महावीर पार्क में पहुँचा—जहाँ विशाल पंडाल में भगवान को समवसरण में विराजमान करके भक्ति भजन हुए। श्री नेमीचंदजी पाटनी ने श्री बाबूभाई का परिचय देते हुए कहा कि ये युवा होते हुये भी महान आध्यात्मिक प्रवक्ता हैं और घर में सुसंपन्न होने पर भी धार्मिक कार्यों में सदैव रत व लीन रहते हैं। आप ब्रह्मचारी हैं।—फिर बाबूभाई का सारगर्भित प्रवचन हुआ—जिसे सुनकर हजारों नर-नारी का विशाल समुदाय मंत्र-मुग्ध हो गया।

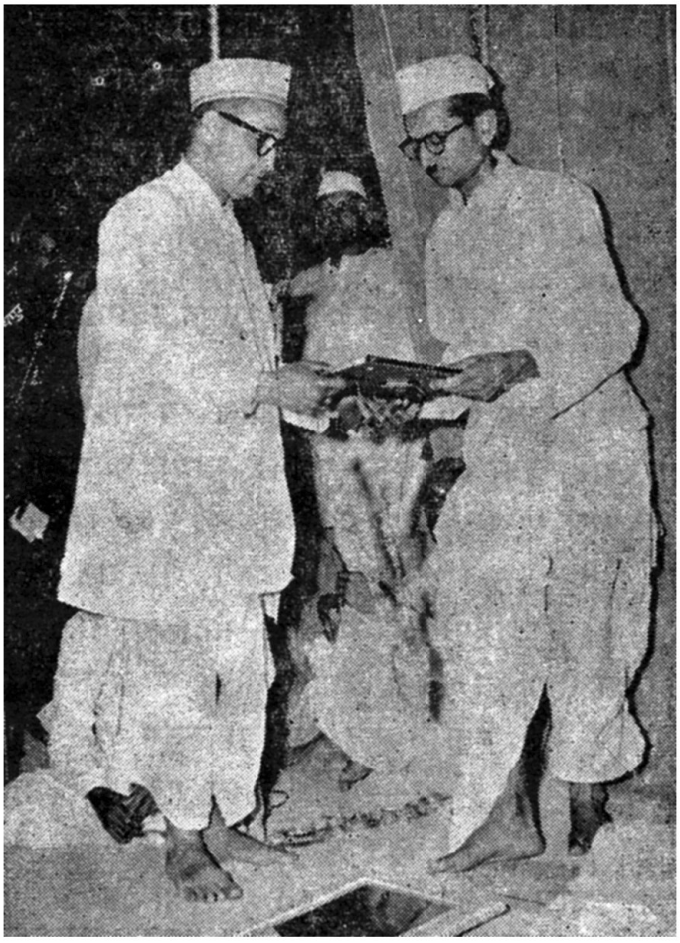

जयपुर में श्री बाबूभाई जैन (संघपति सम्मेदशिखर यात्रा) को स्वागताध्यक्ष श्री पूर्णचन्दजी गोदीका जयपुर जैन समाज व गोदीका परिवार की ओर से अभिनंदन पत्र भेंट कर रहे हैं।

यात्रा संघ ने जयपुर के विभिन्न जैन मंदिरों के दर्शन किये तथा अन्य दर्शनीय स्थानों का पर्यटन किया।

श्री बाबूभाई के करकमलों द्वारा मुमुक्षु मंडल के स्वाध्याय व बिक्री केन्द्र का उद्घाटन हुआ। जहाँ सत्साहित्य का अध्ययन, मनन व लागत मूल्य पर बिक्री की समुचित व्यवस्था होगी।

तारीख २२-२३ को दोनों समय व २४ को प्रातः १ घंटा रोज मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन हुए जिसे हजारों लोगों ने सुना। अंतिम दिन श्री बाबूभाई को स्वागताध्यक्ष श्री पूरणचंदजी गोदीका ने जैन समाज व गोदीका परिवार की ओर से अभिनंदन पत्र भेंट किया। श्री पंडित चैनसुखदास न्यायतीर्थ ने सत्साहित्य प्रचार व प्रकाशन के महत्व को बतलाया तथा पंडित प्रवर टोडरमलजी के जीवन व साहित्य पर प्रकाश डाला और इस अपूर्व धर्म प्रभावना का मुख्यश्रेय श्री कानजी स्वामी व उनके प्रमुख शिष्य श्री खीमजीभाई व श्री बाबूभाई का होना बतलाया।

यात्रा संघ के ६०० यात्रियों द्वारा भी ३ माह की तीर्थयात्रा सकुशल व आनंदपूर्वक समाप्ति पर संघपति श्री बाबूभाई को मानपत्र भेंट किया गया।

श्री भंवरलालजी न्यायतीर्थ, प्रमुख संयोजक ने सबका आभार प्रदर्शन करते हुये कहा कि इसप्रकार के उत्सव व प्रवचनों के आयोजनों की सफलता तभी है, जब हम जीवन में धर्म को उतारें।

यात्रा संघ की ओर से २५१) श्री टोडरमल स्मारक ग्रंथमाला, २५१) श्री महावीर हाई स्कूल भवन जहाँ यात्रा संघ ठहरा था— व ५१) दर्शन विद्यालय को जिनकी बालिकाओं ने एक संवाद किया था, दिये गये।

यात्रा संघ बसों द्वारा पद्मपुरा क्षेत्र के लिए प्रस्थान किया, वहाँ पूजा भजन आदि कार्यक्रम हुए, वहाँ से शाम को लौटते हुये, टोडरमल स्मारक भवन पर भक्ति, भाव प्रदर्शन हुआ। फिर ६०० यात्री संघ को शानदार हार्दिक बधाई दी गई। यहाँ से यात्रा संघ लाडनू, सुजानगढ़ व कुचामन के लिये रवाना हो गया।

—डा० ताराचंद जैन बख्शी
मं० श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल
न्यू कालोनी जयपुर

नया प्रकाशन

देशव्रतोद्योतनम् (दूसरी आवृत्ति सचित्र)

श्री पद्मनंदी पंचविंशतिका के देशव्रतोद्योतन नामक अधिकार पर सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के प्रवचन, हिन्दी अनुवाद श्री बंशीधरजी शास्त्र एम०ए०, प्रकाशक श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, ५५ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता, पृष्ठ संख्या ७८, मूल्य ०-५०, पोस्टेज २५ पैसे, श्रावक को तत्त्वज्ञान सहित षट्कर्मों को प्रतिदिन करने के विषय में, आप इस पुस्तिका को अवश्य पढ़ें इसमें उत्तम भक्तिमय प्रसंग के पाँच चित्र हैं। जो देखते ही बनते हैं।

(१) जिन प्रतिमा अंकन्यास विधि, (२) दक्षिण तीर्थ श्री बाहुबली चरणाभिषेक, (३) पौन्नूर क्षेत्र में कुन्दकुन्दाचार्य के चरणों की पूजा, आदि।

श्री समयसार कलश टीका

(पंडित श्री राजमल्लजी कृत)

हस्तलिखित प्रतियों से बराबर मिलान करके आधुनिक राष्ट्रभाषा में, सुंदर ढंग से, बड़े टाइप में उत्तम प्रकाशन:—

आत्महित का जिसको प्रयोजन हो, उनके लिये गूढ़ तत्त्वज्ञान के मर्म को अत्यंत स्पष्टतया खोलकर स्वानुभूतिमय उपाय को बतानेवाला यह ग्रंथ अनुपम ज्ञान निधि है। पंडित श्री राजमलजी ने (विक्रम संवत. १६१५) पूर्वाचार्यों के कथनानुसार आध्यात्मिक पवित्र विद्या के चमत्कारमय यह टीका बनाई है। लागत मूल्य ५) होने पर घटाया हुआ मूल्य २) पोस्टेज १-४५

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

स्वाध्याय मंदिर की दीवारों से मंगलमय

वचनामृत

(१) वस्तु विचारत ध्यावतैं मनपावै विश्राम,
रसस्वादत सुख ऊपजै, अनुभव याकौ नाम। (नाटक समयसार)

(२) व्यवहारनय इस रीत जान, निषिद्ध निश्चयनय हि से।
मुनिराज जो निश्चय नयाश्रित, मोक्ष की प्राप्ति करे॥२७२॥ (समयसार)

(३) सद्धर्मवृद्धिरस्तु (सत्धर्म की वृद्धि हो),
समयसार जिनराज है स्याद्वाद जिन वैन।

(४) न खलु समयसाराद् उत्तरं किंचिदस्ति।
(वास्तव में समयसार से उत्तम कोई भी नहीं है)

(५) मैं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञान दर्शनमय खरे।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे! ३८ (समयसार)

(६) एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।
प्रेरे जो परमार्थ को वह व्यवहार समंत॥ (आत्मसिद्धि)

(७) करे करम सो ही करतारा, जो जानै सो जाननहारा। (समयसार नाटक)

(८) आत्मा अपनेरूप से है पररूप से नहीं है (हरेक द्रव्य स्व-चतुष्टय से है, पर से नहीं है, पर के आधार से नहीं है) ऐसी जो दृष्टि वह सच्ची अनेकांतदृष्टि है।

(९) निज आत्म निश्चय ज्ञान है, निज आत्म दर्शनचरित है,
निज आत्म प्रत्याख्यान अरु निज आत्म संवर योग है, (समयसार)

(१०) एक परिनाम के न करता दरव कोई,
दोइ परिनाम एक दर्व न धरतु है;
एक करतूति दोइ दर्व कबहू न करै,
दोइ करतूति एक दर्व न करतु है। (समयसार नाटक)

(११) तत्पति प्रीति चितेन येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाण भाजनम्॥ (पद्मनंदि पंचविंशतिका)

(१२) जैन धर्म को काल की मर्यादा में बंदी नहीं कर सकते।

(१३) मोक्ष में तथा बन्ध में समस्त विचित्र मूर्त द्रव्यजाल जीव के शुद्धरूप से 'व्यतिरिक्त' (भिन्न) है, ऐसा जिनदेव का शुद्ध वचन बुद्धपुरुषों को कहा है, यह जगतसिद्ध सत्य को हे भव्य तूं सदा जान। (नियमसार)

(१४) गम पड़े विना=(भावभासनरूप अर्थ सूझे बिना) आगम अनर्थ कारक हो जाते हैं। सतसंग के बिना ध्यान तरंगरूप हो जाते हैं, संत के बिना अंत की बात का निर्णय नहीं पा सकते। लोक संज्ञा से लोकाग्र स्थिति में (अविनाशी मोक्षपद में) नहीं जाया जाता। (श्री राजचंद्रजी)

(१५) चाहे जो=कैसे भी तुच्छ विषयों में प्रवेश हो किंतु उज्ज्वल आत्मा का स्वतः वेग वैराग्य में उछल पड़ना है। (श्री राजचंद्रजी)

(१६) जो आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त देखता है, वह समस्त जिनशासन को देखता है। (समयसार)

(१७) शुभाशुभ भाव का स्वामित्व मिथ्यात्व दर्शन है।

पर्ययमूढ़ा हि परसमयाः। (प्रवचनसार)

(१८) ज्ञान से ही रागद्वेष निर्मूल होते हैं। ज्ञान का मुख्य साधन विचार है, विचार दशा का मुख्य साधन सत्पुरुषों के वचन का यथार्थ ग्रहण है।

(१९) वत्थु सहावो धम्मो (वस्तु का स्वभाव धर्म है)।

(२०) जिसे पुण्य की रुचि है, उसे जड़ (-अनात्मभाव-अशुचि, आस्रव तत्त्व) की रुचि है, अतः उसे आत्मा के धर्म की रुचि नहीं है।

(२१) एक वस्तु में वस्तुत्व की निपजानेवाली (=सिद्धि कारक) अस्ति-नास्ति आदि परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का प्रकाशना वह अनेकांत है। (आत्मख्याति-समयसार टीका)

(२२) यह ज्ञानस्वरूप आत्मा है, वह स्वरूप की प्राप्ति के इच्छुक पुरुषों ने साध्य-साधक भाव के भेद से दो प्रकार से, एक ही नित्य सेवन करने योग्य है; उनका सेवन करो। (आत्मख्याति)

(२३) चेतन पदार्थ की क्रिया चेतन में होती है, जड़ में नहीं होती।

(२४) भूत, वर्तमान और भावि जगत शिरोमणि तीर्थंकर भगवंतों को नमस्कार।

(२५) शुद्धप्रकाश की अतिशयता के कारण जो सुप्रभात के समान है, आनंद में सुस्थित-अचल जिसकी ज्योत है, ऐसा यह आत्मा सदा उदयमान हो। इस अनेकांतपूर्ण ज्ञानवचनमय मूर्ति

(जिनवाणी) सदा प्रकाशमान हो। (समयसार-आत्मख्याति)

(२६) नमः समयसाराय। नमः कुन्दकुन्ददेवाय। नमः अमृतचन्द्रदेवाय। स्वस्ति परब्रह्मणे। स्वस्ति शब्द ब्रह्मणे। स्वस्ति सद्गुरुवे। स्वरूपस्थित सद्गुरुदेव का प्रभावनाउदय जगत का कल्याण करो! जयवंत वर्तो।

(२७) यह जीव कैसे ग्रहण हो? जीव का ग्रहण प्रज्ञाहि से।
ज्यों अलग प्रज्ञा से किया, त्यों ग्रहण भी प्रज्ञाहि से ॥२९६॥

(२८) दुर्लभ मनुष्यत्व को पाकर जो विषयों में रमते हैं, वह राख के लिये रत्न को जलाते हैं। (कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

(२९) दंसणमूलो धम्मो। धर्म का मूल दर्शन। (दर्शन प्राभृत)

(३०) द्रव्यदृष्टि वही सम्यग्दृष्टि है।

(३१) भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किलकेचन। जो कोई सिद्ध हुये हैं, वे भेदविज्ञान से ही सिद्ध हुए हैं। (आत्मख्याति)

(३२) प्रत्येक जीव एक अखंड संपूर्ण द्रव्य होने से उसका ज्ञान सामर्थ्य संपूर्ण है, संपूर्ण वीतराग हो, वह संपूर्ण सर्वज्ञ होता है। (श्री राजचंद्रजी)

(३३) निमित्त की अपेक्षा लेने में आवे तो बंध-मोक्ष दो पहलू आ पड़ते हैं और उनकी अपेक्षा न ली जाये अर्थात् पर्याय भेद की ओर झुकाव न करके अकेला निरपेक्षतत्त्व लक्ष में लिया जाये तो स्व-पर्याय प्रगट होती है।

(३४) मैं एक अखंड ज्ञायक मूर्ति हूँ, विकल्प का एक अंश भी मेरा नहीं है—ऐसा स्वाश्रय भाव रहे, वह मुक्ति का कारण है और विकल्प का (-राग का) एक अंश भी मुझे आश्रयरूप है—ऐसा पराश्रयभाव रहे वह बंध का कारण है। वह उत्कृष्ट तेज-प्रकाश हमें हो कि जिस तेज सदाकाल ते चैतन्य के परिणमन से भरा हुआ है। (आत्मख्याति)

(३५) संसार के विषवृक्ष को क्षणमात्र में क्षय करानेवाले, महासुख का सम्यक्मार्ग प्राप्त करानेवाले, अतुल महिमा के धारक परमोपकारी श्री गुरुदेव के चरणकमल में परमभक्ति से नमस्कार, बारम्बार नमस्कार।

(३६) दर्शन शुद्धि से ही आत्मसिद्धि।

(३७) पूर्णता के लक्ष से शुरुआत वही वास्तविक शुरुआत है। (शुरुआत-प्रारम्भ)

(३८) जिसके ज्ञान सरोवर में सर्व विश्व मात्र कमल तुल्य भासते हैं, ऐसे भगवान श्री सीमंधर आदि जिनेन्द्रदेवों को परमभक्ति से वंदन हो, बारम्बार वंदन हो।

(३९) सहजानंदी शुद्धस्वरूपी अविनाशी मैं आत्मस्वरूप।

स्वरूप में चरण करना (रमना), सो चारित्र है।

स्वसमय में प्रवृत्ति, स्वभाव में प्रवृत्ति करना, ऐसा इसका अर्थ है। मोह-क्षोभ रहित आत्मपरिणाम चारित्र है। (प्रवचनसार)

(४०) वचनामृत वीतराग के परमशांतरस मूल।

औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल॥ (श्री राजचंद्रजी)

(४१) पात्रतार्थ नित सेइये ब्रह्मचर्य मतिमान।

स्वाध्यायमंदिर की दीवारों के चित्रों का

परिचय

(१) ऋषभदेव भगवान के पूर्व के दसवाँ भव—उस समय उनका नाम महाबल राजा है, उनको मंत्री धर्मोपदेश देता है किंतु जरा भी समझते हैं या नहीं, पता नहीं। एकबार मंत्रीजी मेरु पर्वत ऊपर शाश्वत जिनबिंबों की वंदनार्थ गये हैं, वहाँ विदेहक्षेत्र से आये हुवे दो चारण ऋद्धिवान मुनियों को देखकर पूछते हैं कि मेरा राजा भव्य है या अभव्य? तेरा राजा भव्य है, अब दसवें भव में ही तीर्थंकर होगा, उनकी आयु अब एक मास की ही शेष है, यह सुनकर मंत्री राजा को यह बात कहते हैं, राजा व्रतधारी बनता है।

(२) धर्मपरायण चेलना— श्रेणिकराजा अन्य धर्मी होने से चेलना दु:खी है। कहती है कि हे राजा! जैनधर्म के बिना इस राज वैभव को धिक्कार है। राजा उसे जैनधर्म का अनुसरण करने की अनुज्ञा देते हैं। रानी जैनधर्म का बहुत-बहुत प्रचार-प्रसार करती है, राजा भी जैनधर्मी होता है, भगवान महावीर प्रभु के पास तीर्थंकर नामकर्म बाँधते हैं।

(३) हनुमानजी, रानी समूह तथा अन्य राजा-रानी मेरुपर्वत पर शाश्वत जिनालय में भक्ति करते हैं, यात्रा से वापिस लौटते, रात्रि में जिनवार्ता, तत्त्वचर्चा कर रहे हैं, तब श्री हनुमानजी एक तारा को गिरते हुए देखकर, संसार की अनित्यता का विचार करके मुनि होते हैं, अन्य राजा भी मुनि होते हैं। रानियाँ अर्जिकायें होती हैं।

(४) लक्ष्मण का देहत्याग, उस मुर्दे को रामचंद्रजी छह महास तक साथ में रखकर फिरते हैं, लव-अंकुशकुमार शोकमग्न पिता को नमस्कार कर, दीक्षार्थ चले जाते हैं, जिनदीक्षा अंगीकार कर, ध्यान द्वारा केवलज्ञान प्राप्त करते हैं।

(५) तीर्थंकर भगवान श्री मल्लिनाथ कुमार अवस्था में अपने लग्न विवाह उत्सव के प्रसंग पर महल में से बाहर निकलते हैं। पिता द्वारा अतिशय सुशोभित नगरी को देखकर अहो! पूर्वभव में मैं अहमिन्द्रदेव था, तब ऐसा वैभव बहुत कालतक भोगा था, ऐसा स्मरण होने पर वैराग्य को पाकर दीक्षा के लिये वन में जाते हैं, दीक्षा के बाद छह दिन में केवलज्ञान लक्ष्मी का वरण करते हैं (परमात्मदशा को प्रगट करते हैं।)

(६) श्रीकृष्णजी की रानी रुक्मिणी बालपुत्र, प्रद्युम्नकुमार का हरण होने पर नारदजी विदेहक्षेत्र जाते हैं, सीमंधर भगवान के पास से बालक के समाचार प्राप्त कर, स्वयं विद्याधर जाति के मनुष्यक्षेत्र की श्रेणी में जाकर बालक को देखकर, सर्वज्ञ कथित होनहार के सब समाचार रुक्मिणी को पहुँचाते हैं, सोलह साल होने पर वह पुत्र माता से मिलता है।

(७) त्रैलोक्यमण्डन हाथी पर बैठकर रामचंद्रजी आदि भाई देशभूषण-कुलभूषण जो केवलज्ञानी परमात्मा हैं, उनके पास धर्मोपदेश सुनने के लिये जाते हैं, भरतजी मुनिदशा धारण करते हैं, और हाथी सम्यग्दर्शन सहित मासोपवासादि व्रत करता है, पारणा के समय श्रावक लोग अति भक्ति से आहार-जल देते हैं।

(८) श्रीपाल महाराजा (९) श्री कुन्दकुन्दाचार्य (१०) उपसर्ग सहित सुकुमालजी मुनि (११) सुकौशल मुनि (१२) गजकुमार मुनि।

भगवान श्री कुन्दकुन्द प्रवचन मंडप की दीवारों से

'वचनामृत'

(१) हे शिवपुरी के पथिक! प्रथम भाव को जान। भावरहित लिंग से तुझे क्या प्रयोजन है? शिवपुरी का पंथ जिनेन्द्र भगवान ने प्रयत्नसाध्य कहा है। (भावप्राभृत)

(२) सुणी 'घातिकर्म विहीन का सुख, सौ सुखे उत्कृष्ट छे'
श्रद्धे न तेह अभव्य है, जो भव्य वे संमत करे ॥६२॥ (प्रवचनसार)

(३) हे भाई! यदि तेरी शक्ति हो तो अहो! ध्यानमय प्रतिक्रमणादिक करना और यदि इतनी शक्ति न हो तो वहाँ तक श्रद्धा तो अवश्य करना। (नियमसार)

श्री कुन्दकुन्दाचार्य प्रशस्ति लेखः—

(४) कुन्द पुष्प की प्रभा को धारण करनेवाली जिनकी कीर्ति के द्वारा दिशाऐं विभूतिष हुई हैं, जो चारणों के (चारण ऋद्धिधारी महामुनियों के) करकमलों के भ्रमर थे और जिन पवित्रात्मा ने भरतक्षेत्र में श्रुत की प्रतिष्ठा की है, वे विभु कुन्दकुन्द इस पृथ्वी पर किससे वंद्य नहीं हैं? अर्थात् सबसे वंद्य हैं। (चन्द्रगिरि पर्वत का शिलालेख)

(५) यतीश्वर (श्री कुन्दकुन्द स्वामी) रजःस्थान-भूमितल को छोड़कर चार अंगुल ऊपर आकाश में गमन करते थे, उससे मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि वे प्रभु अंतर में, और बाह्य में रज से (अपनी) अत्यंत अस्पृष्टता व्यक्त करते थे। (अंतरंग में वे रागादिक मल से अस्पृष्ट थे और बाह्य में धूल से अस्पृष्ट थे) (चन्द्रगिरि शिलालेख)

(६) आत्मा में स्थिर होने से मोक्ष होता है, इसलिये तुम उस आत्मा का प्रयत्न करके पहिचानो और त्रिविध रूप से उसकी श्रद्धा करो जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो। (भावप्राभृत)

(७) जिनेन्द्रदेव ने जिनशासन में ऐसा कहा है कि—पूजादिक में और व्रतादि में पुण्य है, तथा मोह और क्षोभरहित आत्मा का जो परिणाम है सो धर्म है। (भावप्राभृत)

(८) 'नहिं मानता उस रीत पुण्य रु पाप में न विशेष छै,
वह मोह से आछन्न घोर अपार संसारे भमे' ॥७७॥ (प्रवचनसार)

(९) हे भाई! तू किसी भी प्रकार महाकष्ट से अथवा मरकर भी (मृत्यु समान प्रतिकूलता आवे तो भी) तत्त्व का कौतूहली होकर इन शरीरादिक मूर्तद्रव्यों का एक मुहूर्त (दो घड़ी) पड़ौसी

होकर आत्मा का अनुभव कर, जिससे अपने आत्मा को समस्त परद्रव्यों से भिन्न विलसता देखकर इन शरीरादि मूर्तिक पुद्गल द्रव्यों के साथ एकत्वपन के मोह को तू शीघ्र ही छोड़ देगा।

(आत्मख्याति)

(१०) भेदविज्ञान जग्यो जिनके घट,
शीतल चित्त भयौ जिम चन्दन।
केलि करें शिवमारग में,
जगमाहिं जिनेसुर के लघुनंदन॥
सत्य सरूप सदा जिनके,
प्रगट्यो अवदात मिथ्यात-निकंदन।
सान्तदशा तिनकी पहिचानी,
करे कर जोर बनारसी वंदन॥ (नाटक समयसार)

(११) सुर-असुर-नपति वंद्य को, प्रविनष्ट घातिकर्म को,
प्रणमन करूँ मैं धर्म कर्त्ता तीर्थश्री महावीर को॥१॥
अरु शेष तीर्थंकर तथा सब सिद्ध शुद्धास्तित्व को,
मुनि ज्ञान-दृग, चारित्र-तप-वीर्याचरण संयुक्त को॥२॥
उस सर्वको भी साथ अर प्रत्येक को प्रत्येक को,
बंदुं वली मैं मनुष्यक्षेत्रे वर्तता अर्हन्त को॥३॥ (प्रवचनसार)

(१२) आत्माज्ञानं स्वयंज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्॥६२॥

अर्थ - आत्मा ज्ञानस्वरूप है, स्वतः ज्ञान ही है, वह ज्ञान के अतिरिक्त अन्य क्या करे? आत्मा परभाव का कर्ता है - ऐसा मानना, सो व्यवहारी जीवों का मोह है। (आत्मख्याति)

(१३) छेदन करो जीव बन्ध का तुम नियत निज-निज चिन्ह से।
प्रज्ञा-छैनी से छेदने दोनों पृथक् हो जाय है॥२९४॥
छेदन होवे जीव बन्ध का जहँ नियत निजनिज चिन्ह से।
वह छोड़ना इस बन्ध को, जीव ग्रहण करना शुद्ध को॥२९५॥ (समयसारजी)

(१४) विद्वज्जनो भूतार्थ तज, व्यवहार में वर्तन करे।
पर कर्मक्षय विधान तो, परमार्थ-आश्रित संत के॥१५६॥ (समयसार)

(१५) संयम नियम तप धारतें आत्मा समीप है जिसके।
स्थायि सामायिक है उसे, जो जिन शासन में कहे॥ (नियमसार)

(१६) जिनके ज्ञानदर्पण में समस्त स्व-पर ज्ञेय अत्यंत स्पष्टरूप से-प्रत्यक्षरूप से प्रतिभासित होते हैं, ऐसे श्री सीमंधरादि त्रिकाल के जगदोद्धारक तीर्थंकर भगवंतों को परमोत्कृष्ट भक्ति से नमस्कार हो।

(१७) हे परमोपकारी कहान गुरुदेव! आपने वीतराग-प्रणीत सत्शास्त्रों में निरूपित द्रव्य-गुण-पर्याय की स्वतंत्रता, निश्चयव्यवहार का गहन रहस्य और सम्यग्दर्शन की परम महिमा प्रगट करके, अनादिकालीन भयंकर भव-भ्रमण को छेदकर शाश्वत सुख प्राप्त करानेवाले सत्ज्ञान को समझाया है। उसके लिये हम आपको परम भक्ति से नमस्कार करते हैं।

(१८) नहिं अप्रमत्त प्रमत्त नहिं जो ऐक ज्ञायकभाव है।
अे रीति 'शुद्ध' कहाय अरु, जो ज्ञात वोतो वो हि है॥६॥
चारित्र, दर्शन, ज्ञान, भी व्यवहार कहता ज्ञानी के।
चारित्र नहिं, दर्शन नहिं, नहिं ज्ञान, ज्ञायक शुद्ध है॥७॥ (समयसार)

(१९) यह निचोर या ग्रंथ कौ, यहै परम रस पोख।
तजै शुद्ध नय बंध है, गहै शुद्धनय मोख॥ (नाटक समयसार)

(२०) जो क्रोध-पुद्गलकर्म जीव को परिणमावे क्रोध में,
क्यों क्रोध उसकी परिणमावे जो स्वयं नहिं परिणमे।
अथवा स्वयं जीव क्रोधभावों परिणमे-तुझ बुद्धि है,
तो क्रोध जीव को परिणमावे क्रोध में-मिथ्या बने। (समयसार)

(२१) यह (ज्ञानस्वरूप) पद कर्म से वास्तव में दूरवर्ती है, दुष्प्राप्य है, और सहज ज्ञान की कला द्वारा वास्तव में सुलभ है, इसलिये निज ज्ञान की कला के बल से इस पद का अभ्यास (अनुभव) करने के लिये जगत् निरन्तर प्रयत्न करो! (आत्मख्याति)

(२२) अशुचिपना विपरीतता ये आस्रवो का जानके।
अरु दुःख कारण जानके, इससे निवर्तन जीव करे। (समयसार)

(२३) उपादान निज गुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय;
भेदज्ञान परवान विधि विरला बूझे कोय।

उपादान बल जहँ तहाँ, नहिं निमित्त को दाव;
एक चक्र सों रथ चले, रवि को यहै स्वभाव।
सबै वस्तु असहाय जहाँ, तहाँ निमित्त है कौन;
ज्यों जहाज परवाह में, तिरे सहज बिन पौन।
उपादान विधि निरवचन, है निमित्त उपदेश;
बसे जु जैसे देश में, करे सु तैसे भेष। (बनारसी विलास)

(२४) ओ जानता अर्हन्त को गुण-द्रव्य अरु पर्याय से।
वह जीव जाने आत्म को तस मोह होता नष्ट रे ॥८०॥
जीव मोह को कर दूर, आत्मस्वभाव सम्यक् पायके।
यदि परिहरे रागादि तो शुद्धात्मा की प्राप्ति करे ॥८१॥
अर्हंत सब कर्मांश का कर नाश इस भाँति खरे।
उपदेश भी ऐसा ही कर निवृत्त हुए बंदु उन्हें ॥८२॥ (समयसार)

(२५) हे मुनि! दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वृद्धि के लिये दीक्षा प्रसंग की तीव्र त्याग भावना करो, किसी रोगोत्पत्ति प्रसंग की उग्र वैराग्य अवस्था को, किसी दुःख के प्रसंग पर प्रगट हुई उदासीनता की भावना को, किसी सत्य उपदेश के प्रसंग पर हुई परम आत्मिक भावना को, किसी पुरुषार्थ के धन्य अवसर पर जागृत हुई पवित्र अंतर भावना को स्मरण में रखना, निरंतर स्मरण में रखना, भूलना नहीं। (भावप्राभृत)

(२६) श्रामण्य मे सत्तामयी सविशेष इन पदार्थ की,
श्रद्धा नहि, वह श्रमण नहिं, उसमें से धर्मोद्भव नहि।
आगम विषे कौशल्य है अरु मोह दृष्टि विनष्ट है,
वीतराग चरितारूढ़ है उस मुनि-महात्मा 'धर्म' है। (प्रवनसार)

प्रवचन मंडप की दीवारों पर से
चित्र परिचय

भगवान श्री कुन्दकुन्द प्रवचन मंडप की दीवारों पर २९ सुंदर चित्र बने हैं, जिन्हें देखते ही परम पवित्र संतों का स्मरण होता है, और ज्ञान-ध्यान-भक्ति-वैराग्य एवं निश्चलता के पुरुषार्थ प्रेरक दृश्य देख-देखकर जिज्ञासुओं का आत्मा डोलने लगता है। उन चित्रों का संक्षिप्त विवरण यहाँ पर दिया जाता है।

[१] भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव वन में ताड़पत्र पर समयसार शास्त्र लिख रहे हैं।

[२] परमोपकारी पूज्य श्री कानजी स्वामी।

[३] श्री धरसेन आचार्य, श्री पुष्पदंत और भूतबलि नामक मुनिवरों को षटखंडागम का ज्ञान दे रहे हैं। (आचार्यदेव का स्वप्न तथा मुनियों की मंत्रसाधना को भी दिखाया है।)

[४] श्री श्रेयांसकुमार, मुनिदशा में स्थित भगवान श्री ऋषभदेव को पड़गाहन करके नवधाभक्ति पूर्वक इक्षुरस का आहार दे रहे हैं।

[५] शाश्वत तीर्थ श्री सम्मेदशिखरजी।

[६] श्री नेमिनाथ भगवान की लग्नयात्रा और दीक्षा कल्याणक प्रसंग।

[७] श्री सीमंधर भगवान की माताजी के १६ स्वप्न और गर्भकल्याणक के शुभप्रसंग पर इन्द्र-इन्द्राणी आदि दिव्य वस्त्राभूषण से माता-पिता की पूजन कर रहे हैं।

[८] श्री सीमंधर भगवान के जन्मकल्याणक के प्रसंग पर इन्द्र ऐरावत हाथी पर भगवान को लेकर मेरुपर्वत पर जाता है और वहाँ जन्माभिषेक करता है।

[९] श्री सीमंधर भगवान का दीक्षाकल्याणक प्रसंग।

[१०] श्री सीमंधर भगवान का केवलज्ञान कल्याणक प्रसंग।

[११] चेलना रानी श्री यशोधर मुनिराज का उपसर्ग दूर करती है, और श्रेणिक राजा जैनधर्म के श्रद्धालु होते हैं।

[१२] लंका पर विजय प्राप्त कर श्री सीताजी को लेकर श्री रामचंद्रजी उसी समय भगवान शांतिनाथ के मंदिर में जाकर सीताजी, लक्ष्मण, विशल्या, हनुमान, सुग्रीव और भामंडल सहित नृत्य-संगीत पूर्वक भगवान की भक्ति स्तुति कर रहे हैं।

[१३] स्मशान में ध्यानस्थ सुदर्शन सेठ को दासी द्वारा बुलवाकर अपनी कुवासना की इच्छा में न फँसते देखकर अभयारानी विडम्बना बनाती है; राजा की आज्ञा से सुदर्शन सेठ का वध करते समय तलवार नहीं चलती और सेठ दीक्षा धारण करते हैं।

[१४] सुकौशल के पिता कीर्तिधरमुनि को आहार लेने के लिये नगर में आता देखकर सुकौशल की माता सहदेवी उन मुनि को नगर के बाहर निकलवा देती हैं, मुनिराज नगर के बाहर ध्यान में बैठ जाते हैं। रोती हुई धायमाता से मुनि का वृत्तांत सुनकर सुकौशलकुमार मुनि के पास दौड़े जाते हैं और वहाँ अश्रुपात करते हैं तथा दीक्षा लेते हैं। सहदेवी पुत्र के शोक में दु:खी होकर मृत्यु को प्राप्त करती है और बाघण होती है तथा ध्यानमग्न सुकौशल मुनि का भक्षण करती है, सुकौशल अंतकृत केवली होते हैं, बाघण कीर्तिधर मुनि के उपदेश से जातिस्मरण ज्ञान को प्राप्त कर संन्यास धारण करती है और देवलोक में जाती है।

[१५] नवपरिणीत वज्रबाहुकुमार अपनी रानी मनोदया और साले उदयसुंदर सहित ससुराल की ओर जाते हैं। मार्ग में ध्यानस्थ मुनि को देखकर वज्रबाहुकुमार उनकी ओर एकटक देखते रह जाते हैं, तब उदयसुंदर हँसी उड़ाता है। वज्रबाहु दीक्षित होते हैं, साथ में उदयसुंदर तथा २६ राजकुमार दीक्षित होते हैं, और मनोदया अर्जिका होती है।

[१६] कैलास पर्वत पर भरतचक्रवर्ती द्वारा प्रतिष्ठापित भूत, वर्तमान और भविष्य की चौबीसी के जिनबिम्ब तथा भरतचक्रवर्ती द्वारा मुनि श्री बाहुबलिजी की पूजन और केवलज्ञान को प्राप्त बाहुबलिजी का दृश्य।

[१७] महावीर भगवान का जीव पूर्व में दसवें भव में सिंह पर्याय में था और हिरण का शिकार कर रहा था। उस समय दो चारणऋद्धिधारी मुनि आकाशमार्ग से जा रहे थे, वे नीचे आते हैं और उपदेश देते हुए कहते हैं कि—'अरे हे सिंह! तुझे दसवें भव में तीर्थंकर होना है;' उसी समय सिंह को जातिस्मरण ज्ञान होता है, आँखों से आँसू बहने लगते हैं और वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करके निराहार व्रत ग्रहण करता है।

[१८] श्री सीमंधर भगवान, श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव, श्री अमृतचंद्राचार्यदेव, श्री कानजीस्वामी और श्रोतागण।

[१९] श्री सुकुमालजी खिड़की में से मुनिराज के दर्शन करके नीचे उतरते हैं और मुनिराज से ऐसा सुनकर कि—'मेरी आयु तीन दिन की शेष है' तुरंत ही दीक्षित हो जाते हैं और वन में जाकर ध्यान करते हैं वहाँ सियालनी उनका भक्षण करती है।

[२०] श्री शांतिनाथ भगवान पूर्व के पाँचवें भव में विदेहक्षेत्र में क्षेमंकर तीर्थंकर के पुत्र वज्रयुध चक्रवर्ती थे। इन्द्रसभा में उनके ज्ञान की प्रशंसा सुनकर एक देव परीक्षा लेने आता है और उनके ज्ञानसामर्थ्य को देखकर आश्चर्यचकित होता है तथा उनकी स्तुति करता है। तथा श्री शांतिनाथ भगवान पूर्व तीसरे भव में विदेहक्षेत्र में श्री धनरथ तीर्थंकर के पुत्र थे। वे प्रोषधोपवास करके वन में मेरु समान अचल होकर ध्यान करते हैं; तब इन्द्रसभा में उनके शील की प्रशंसा सुनकर दो देवियाँ परीक्षा करने आती हैं, और उनका शील देखकर वे आश्चर्यचकित होकर उन्हें नमस्कार करती हैं।

[२१] श्री सीताजी की अग्नि-परीक्षा के पश्चात् श्री रामचंद्रजी उनसे गृह पधारने के लिये कहते हैं; किंतु वे उसका अस्वीकार करके अर्जिका बनती हैं।

[२२] पूर्वभव में जो श्रीकंठ राजा का भाई था वह इन्द्र, देवों सहित अष्टाह्निका पर्व के दिनों में नंदीश्वर द्वीप को (श्री कंठराजा के महल के ऊपर से) जाात है उसे देखकर श्रीकंठराजा भी भक्तिवश होकर रानी सहित विमान द्वारा नंदीश्वरद्वीप की ओर जाते हैं किंतु मानुषोत्तरपर्वत के निकट आते ही उनका विमान रुक जाता है उससे वे वैराग्य धारण करके वहीं मुनि हो जाते हैं।

[२३] दुष्ट बलिराजा अकंपनाचार्य आदि ७०० मुनियों को अग्नि का उपसर्ग करता है। श्री विष्णुकुमार मुनि वैक्रियिक ऋद्धि से वामन ब्राह्मण का रूप धारण करके उस उपसर्ग को शांत करते हैं तथा उनसे बलिराजा क्षमा माँगता है।

[२४] राम-लक्षण सीता वन में सुगुप्ति-गुप्ति नामक मुनियों को आहारदान देते हैं।

[२५] वेदधर्म की चर्चा करते हुए इन्द्रभूति को लेकर ब्राह्मण रूपधारी इन्द्र महावीर भगवान के समवशरण की ओर जाता है। मानस्तम्भ को देखते ही इन्द्रभूति का मान गलित हो जाता है और समवशरण के अंदर प्रवेश करके वही गौतम गणर बनते हैं।

[२६] अंजनचोर, सींकें को काटकर प्राप्त की हुई विद्या के द्वारा अकृत्रिम चैत्यालय को जाता है, वहाँ जिनदत्त सेठ भी पूजा कर रहे हैं। पश्चात् वे दोनों मुनि के पास जाकर उपदेश श्रवण करते हैं और अंजन मुनि होकर ध्यानमग्न होता है तथा केवलज्ञान प्राप्त करता है।

[२७] श्रीमद्राजचंद्र (श्री सिद्धशिला, ईडर का दृश्य)।

[२८] सुभद्रा सेठानी ने चंदना सती को साँकल से बाँध रखा है। वह भगवान महावीर को आदानदान देने की भावना भाती हैं, भावना करते-करते उसके बंधन खुल जाते हैं और चंदनासती

भगवान का पड़गाहन करके नवधाभक्तिपूर्वक आहारदान देती हैं, उस समय देव पुष्पवृष्टि करते हैं और पश्चात् चंदना अर्जिका होती हैं।

[२९] पाँचों पांडव शत्रुंजय पर्वत के ऊपर ध्यानमग्न मुनिदशा में स्थित हैं। वहाँ दुर्योधन का भानजा क्रोधाविष्ट होकर उन्हें लोहे के धगधगाते आभूषण (कड़े) पहिनाकर उपसर्ग करता है।

इसके अतिरिक्त श्रीमंडप के मूल प्रवेशद्वार पर श्री कुन्दकुन्दप्रभु की एक सुंदर कलामय, ध्यानस्थ, शांतमूर्ति बनाई गई है, उसका दृश्य सुंदर एवं आकर्षक है।

पूज्य स्वामीजी के समाचार

राजकोट—

सौराष्ट्र तारीख २-५-६५ परमोपकारी पूज्य कानजी स्वामी सुख शांति में विराजमान हैं पूज्य स्वामीजी यहाँ चैत्र सुदी १३ के रोज पधारे अभूतपूर्व स्वागत हुआ मंगल प्रवचन के बाद भगवान महावीर प्रभु का दिव्य संदेश सुनाया। [यहाँ २०० संख्या में अंध महिलाओं का बड़ा आश्रम है, आमंत्रण आने से वाहँ उपदेश देने पधारे थे।]

हमेशा प्रात: और दोपहर में समयसार कलश टीका श्री राजमल्लजी कृत जो नया प्रकाशन आधुनिक हिन्दी भाषा में परिवर्तन कराके छपवाया है, उसके ऊपर उत्तम शैली से प्रवचन हो रहे हैं, और रात्रि को ४५ मिनिट शंका-समाधान होता है, तीनों समय बड़ी संख्या में जैन-जैनेतर धर्म जिज्ञासु अत्यंत रुचिपूर्वक लाभ ले रहे हैं। राजकोट में स्वाध्याय प्रेमी और उच्च शिक्षा प्राप्त श्रोताओं की संख्या अधिक होती है।

श्री मानस्तंभ (धर्म वैभवस्तंभ) तथा समवसरण मंदिर तैयार हो गया है, जो गिरनारजी जाते यात्रियों को उत्तम आकर्षण बनेगा।

श्री जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की पूर्ण तैयारियाँ हो चुकी हैं और महोत्सव का प्रारम्भ—जाप्य विधि सहित वैशाख सुदी १ तारीख २-५-६५ को श्रीजी को गाजे बाजे के साथ

जुलूस निकालकर विधि मंडप में विराजमान करके-कर दिया है। प्रतिष्ठाचार्य श्री नाथुलालजी शास्त्री संहितासूरि (इंदौर) है। राजकोट दिगम्बर जैन समाज के प्रमुख श्री रामजीभाई माणिकचंद दोशी एडवोकेट तथा सेक्रेटरी श्री रतीलाल मोहनलाल घीया तथा श्री किशोरचंद्र मूलजीभाई लाखाणी तथा कार्यकर्ताओं का अपूर्व उत्साह है। यह महोत्सव सुंदरतम व्यवस्था व्यवस्थित होगा। —ब्र० गुलाबचंद जैन

राजकोट—

तारीख ३-५-६५ परमोपकारी पूज्य कानजी स्वामी की ७६ वीं जन्मजयंती बैशाख सुदी २ के शुभ दिन विशेष भक्ति समारोह पूर्वक मनायी गई, बाहर गाँव से देहली, कलकत्ता, बम्बई से तथा म०प्र० से इस अवसर पर खास मेहमान पधारे थे, सैकड़ों की संख्या में अभिनंदन-शुभेच्छा के तार तथा पत्र आये, पूज्य स्वामीजी के द्वारा दिगम्बर जैनाचार्यों कथित-सर्वज्ञ वीतराग कथित सम्यक् अनेकांतमय अमृतरस से भरा हुआ परम आध्यात्मिक उपदेश जो ३० साल से चल रहा है वह धर्म जिज्ञासुओं के लिए महान अपूर्व उपकार है, अनेक प्रकार धर्म प्रभावना हो रही है और हजारों आत्मार्थी रसिक भव्यजन अपना आत्महित साध रहे हैं इत्यादि बातों का स्मरण पूर्वक पूज्य स्वामीजी हमारे बीच चिरकाल तक रहें, ऐसी शुभेच्छा द्वारा प्रमुख वक्ताओं द्वारा पूज्य स्वामीजी को श्रद्धांजलि समर्पण की। —ब्र० गुलाबचंद जैन

वैराग्य समाचार

उज्जैन : तारीख १७-४-६५ को रायबहादुर श्रीमंत सेठ श्री लालचंदजी सेठी धर्म जागृति सावधानता सहित देह त्याग करके स्वर्ग निवासी हुए। आप तारीख १६, रात्रि के १० बजे तक कार्यरत थे। तारीख १७ सबेरे श्वास शुरु हो गया। उस समय आपका पूरा परिवार पास था। डॉक्टर बुलाये गये परंतु सेठ सा० ने कहा कि अब मैं बचूँगा नहीं और मेरा कोई उपचार न कराया जाये। डाक्टर जब आये तो सेठीजी ने उनसे बैठ जाने के लिये कहा। यह कहकर आपने अपने सभी परिवार के सदस्यों से क्षमा माँगी और बैठे-बैठे भगवान महावीर का नाम लेने लगे और नाम लेते-लेते पार्थिव शरीर का त्याग कर दिया। आप अनेक जैन संस्थाओं के प्रमुख थे। गत पौष मास में आप उज्जैन में वेदी प्रतिष्ठा निमित्त पूज्य कानजीस्वामी को प्रार्थना करने के लिये सोनगढ़ पधारे थे।

स्वामीजी के परिचय से तथा सोनगढ़ की प्रत्येक संस्था की कार्य पद्धति से एवं वहाँ के वातावरण से आप अत्यंत प्रभावित हुये थे। बहुत समय से पूज्य स्वामीजी के प्रति आपका भक्तिभाव था। पूज्य स्वामीजी विगत माह मास में उज्जैन पधारे, प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ उसमें आपने उल्लास सहित अग्र भाग लिया। जैन पत्रिकाओं में भी अनेक लेख लिखकर गलत फहमी दूर करने का प्रयत्न किया।

हम सब श्री जिनेन्द्र भगवान से भावना भाते हैं कि वे उनके परिवारजनों को इस दुःख को सहन करने की शक्ति दे। हम उनको अपनी हार्दिक संवेदनाएँ प्रकट करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वे वीतरागी देव-शास्त्र-गुरुओं की सम्यक् उपासना द्वारा धर्म प्रेम में आगे बढ़ें और शीघ्र ही आत्महित साधें।

वैराग्य समाचार

श्री हरिश्चंद्रजी दिल्ली शाहदरा का स्वर्गवास तारीख २२-४-६५ के दिन हृदयगति रुकने से हो गया। आप बड़े धर्मात्मा थे, धर्म प्रभावना के कार्य में आपकी बड़ी लगन थी, आप दानशील थे। हर साल दशलक्षण पर्व के दश दिन सोनगढ़ में आकर पूज्य गुरुदेव की अमृतबंशी का पान किया करते थे। आपकी आत्मा पवित्र जैन धर्म की साधना पूर्ण करे, ऐसी जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना है तथा उनके परिवारजनों से संवेदना है। —प्रेमचन्द जैन, दिल्ली

सर्वज्ञदेवकथित छहों द्रव्यों की स्वतंत्रतापूर्वक

: सामान्य गुण :

१. अस्तित्वगुण : कर्त्ता जगत का मानता जो 'कर्म या भगवान को',
वह भूलता है लोक में अस्त्विगुण के ज्ञान को;
उत्पाद व्ययुत वस्तु है फिर भी सदा ध्रुवता धरे,
अस्तित्वगुण के योग से कोई नहीं जग में मरे॥१॥

२. वस्तुत्वगुण : वस्तुत्वगुण के योग से हो द्रव्य में स्व स्वक्रिया,
स्वाधीन गुण-पर्याय का ही पान द्रव्यों ने किया;
सामान्य और विशेषता से कर रहे निज काम को,
यों मानकर वस्तुत्व को पाओ विमल शिवधाम को॥२॥

३. द्रव्यत्वगुण : द्रव्यत्वगुण इस वस्तु को जग में पलटता है सदा,
लेकिन कभी भी द्रव्य तो तजता न लक्षण सम्पदा;
स्व-द्रव्य में मोक्षार्थि हो स्वाधीन सुख लो सर्वदा,
हो नाश जिससे आज तक की दु:खदायी भवकथा॥३॥

४. प्रमेयत्वगुण : सब द्रव्य-गुण प्रमेय से बनते विषय हैं ज्ञान के,
रुकता न सम्यग्ज्ञान पर से जानियो यों ध्यान से;
आत्मा अरूपी ज्ञेय निज यह ज्ञान उसको जानता,
है स्व-पर सत्ता विश्व में सुदृष्टि उनको जानता॥४॥

५. अगुरुलघुत्वगुण : यह गुण अगुरुलघु भी सदा रखता महत्ता है महा,
गुण-द्रव्य को पररूप यह होने न देता है अहा!
निज गुण-पर्यय सर्व ही रहते सतत निजभाव में,
कर्त्ता न हर्त्ता अन्य कोई यों लखो स्व-स्वभाव में॥५॥

६. प्रदेशत्वगुण : प्रदेशत्वगुण की शक्ति से आकार द्रव्यों को धरे,
निजक्षेत्र में व्यापक रहे आकार भी स्वाधीन है;
आकार हैं सबके अलग, हो लीन अपने ज्ञान में,
जानों इन्हें सामान्य गुण रक्खो सदा श्रद्धान में॥६॥

नया प्रकाशन

श्री प्रवचनसार शास्त्र (दूसरी आवृत्ति)

यह शास्त्र भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत पवित्र अध्यात्मसाररूप महान ज्ञान निधि है। जिसमें सातिशय निर्मल ज्ञान के धारक महामहर्षि श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ने सम्यग्ज्ञान-दर्शन (ज्ञेय) और चारित्र अधिकार में स्वानुभव गर्भित युक्ति के बल द्वारा सुनिश्चित द्रव्य-गुण-पर्यायों का विज्ञान, सर्वज्ञ स्वभाव की यथार्थता, स्व-पर ज्ञेयों की स्वतंत्रता, विभाव, (अशुद्धभाव) की विपरीतता बताकर अंत में ४७ नयों का वर्णन भी संस्कृत टीका द्वारा ऐसे सुंदर ढंग से किया है कि सर्वज्ञ स्वभाव की महिमा सहित विनय से स्वाध्यायकर्ता अपने को धन्य माने बिना नहीं रह सकते।

श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ने समस्त जिनागम के साररूप रहस्य को खोलकर धर्म जिज्ञासुओं के प्रति परमोपकार किया है। उसी टीका का प्रामाणिक अनुवाद, बड़े टाइप में उत्तम छपाई, बढ़िया कागज, रेगजिन कपड़ेवाली बढ़िया जिल्द, प्रत्येक गाथा लाल स्याही में छपी है। सभी जिज्ञासु यथार्थ लाभ लें, ऐसी भावनावश मूल्य लागत से भी बहुत कम, मात्र ४) रुपया रखा गया है। पृष्ठ ४७०, पोस्टेज २.१० रुपये, (किसी को कमीशन नहीं है)

(यह शास्त्र बंबई, दिल्ली, सहारनपुर, बड़ौत, उदयपुर, जयपुर, सागर, भोपाल, उज्जैन, इन्दौर, विदिशा, गुना, अशोकनगर, ललितपुर, जबलपुर, खंडवा, सनावद, दाहोद, अहमदाबाद, आदि में दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा भी प्राप्त हो सकेगा।)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।